

ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन

(A Comparative Study of the Grammar of Brij-Bhasa and Khariboli)

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

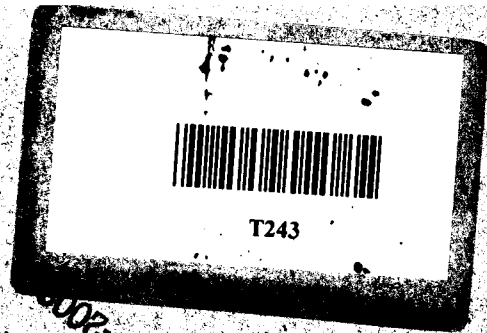


T243

प्रस्तुतकर्ता
गेंदालाल शर्मा



T243



T243
Cop. 1 #1

CHECKED 2008



JAN 1981

CHECKED 1996-97

Not in Circulation



विषय- सूची

प्राचिन

१- ४

पु०

ग्रन्थ वृत्तान्त

(५ - ४४)

ग्रन्थाणां की उत्पत्ति एवं विस्तार
ग्रन्थं वीर वायुनिक माध्याह्न
ग्रन्थं के के- परिचयी, दक्षिणी एवं पूर्वी
परिचयी ग्रन्थ की रचना- के- विधि- नीम
परिचयी ग्रन्थ की विविधताएं
दक्षिणी ग्रन्थ की रचना, के- विधि- नीम
दक्षिणी ग्रन्थ की विविधताएं
पूर्वी ग्रन्थ की रचना- के, विधि नीम
वाचस्पत्य वीर परिनिष्ठित ग्रन्थ
परिनिष्ठित ग्रन्थ की अनि सम्बन्धी विविधताएं
ग्रन्थ ग्रन्थ
वीरकी ग्रन्थ
वैष्णवी ग्रन्थ
वागवी ग्रन्थ
स्यानीय वीरियों के उक्त के के
परिचयी विन्धी वीर उक्त की वागवीय वीरियां
ग्रन्थाणां
ग्रन्थ उक्त की निरुक्ति
की-नी में ग्रन्थ उक्त के विभिन्न कर्त
प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ग्रन्थ उक्त के कर्त
ग्रन्थाणां की व्यापकता
ग्रन्थाणां का नीम एवं वीरार्थ
ग्रन्थ उक्त का माध्याह्न के कर्त में प्राचीन

साहित्यिक प्रकाशना (भविष्यस्य एवं दीर्घकाल)

प्राचीन एवं विंश

प्रकाशना की विभिन्न उपलब्धियाँ

प्रिन्टींग ब्यूरो

(४५ - ५१)

कड़ी बोली की निरुक्ति एवं विकास

कड़ी बोली का नामकरण

कड़ी बोली राज्य के विभिन्न वर्ग

कड़ी बोली राज्य का प्रयोग

कड़ी बोली की उत्पत्ति

कड़ी बोली का प्राचीन रूप

कड़ी बोली की व्यापकता

कड़ी बोली का स्तर

कड़ी बोली की साहित्यिक सीमाएँ तथा उपयोगी भाषाएँ

कड़ी बोली के विभिन्न नाम

हिन्दी का नाम

हिन्दी, हिन्दी का नाम हिन्दी

हिन्दुस्तानी, हिन्दीस्तानी (हिन्दुस्तानी)

दिल्ली का दक्षिणी

रेखा

रूप

कड़ी बोली की कुछ साहित्यिक परम्परा

सीक रचनाओं में कड़ी बोली

कड़ी बोली के ग्राम गीत

कड़ी बोली का साहित्यिक साहित्य

स्वार्ग, वात, नाटक
सुंगारी सांजीस
हस्तन के नीचे

पुण्यीय बन्धाय

(१२ - ११८)

कनकं वीर कनकं कन माया
कौन्तेनी प्राकृत वीर कनकी विविधताएं
कनकट कन परवर्ती कनकं के कन में प्रतीय
परवर्ती कनकं की कन विविधताएं
कनकत स्वर
स्वर कनक
कन-विचार
कनक विविधता
कनक
कनक
कनक
कनक
कनक
कनक
कनक

पुण्यीय बन्धाय

(११८ - १२०)

कनकं वीर कनकी पीली
कनकियां
स्वर
कनक

स्वात्मिक विकास

कारक विभक्ति

परस्पर

प्रिया

पाप

कास रचना

कर्मनाम

विशेषण

कर्म

कास

नाम-विन्यास

कर्म की

(सत्य, कर्म की और भी शब्द)

मंगल कथा

(१५१-१६)

कथा का साहित्य

कथा का विकास में सहायक शक्तियाँ

कथायुक्त का वैयक्तिक साहित्य

कास का

कास

कथा का नव साहित्य

कथा का मौखिक नव साहित्य

प्राचीन कास

पूर्वसाहित्य कास

कथा का नव का विकास

प्रमाणों का क्वांटि न्व साहित्य
 प्रमाणों न्व का क्वांटि साहित्य
 प्रमाणों क न्व का टीका साहित्य
 साहित्यिक टीकारं
 धार्मिक तथा अन्य टीकारं

पञ्चमः सर्गः

(۱۷۷ - ۱۷۴)

लड़ी बीबी का साहित्य
 लड़ी बीबी का भाव्य साहित्य
 वर्तमान काल की लड़ी बीबी की कविता
 लड़ीबीबी की विविध शैलियाँ
 लड़ी बीबी के गीत प्रभाव, पं., निराला, महाप्रीति बना
 लड़ी बीबी का नव साहित्य
 लड़ी बीबी का नव के विकास के कारण
 लड़ी बीबी का नव के प्रकाश पर आधारित
 समाजवाद, स्वातंत्र्यवाद, संस्कृतवाद, स्वतंत्र विचार
 लड़ी बीबी के समाचार पत्र
 लड़ी बीबी का नव का समीक्षात्मक विकास

सुखदाम सुखाय

(१४ - २६)

प्रकाशात्मा एवं सङ्गीत वाद्यों के व्याकरण कर्णों का सुलभात्मक वर्णन
हिन्दी के विकास क्रम की आवश्यकता
संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की अभिव्यक्तियों का विकास क्रम
पाठी तथा प्राकृत अभि सङ्ग्रह

अनि सम्बन्धी साम्य वैयर्थ्य
अन्य वीर प्रकामना
कारक विपक्षित

संज्ञा-

वाचि वाचक एवं व्यक्तित्वापक
कारान्त संज्ञा शब्द
वाकारान्त संज्ञा शब्द
वकारान्त संज्ञा शब्द
हं कारान्त संज्ञा शब्द
उ कारान्त संज्ञा शब्द
व कारान्त संज्ञा शब्द
र कारान्त संज्ञा शब्द
ह कारान्त संज्ञा शब्द

मात्र वाचक संज्ञा शब्द-

संज्ञा वीर विविधता शब्दों से निर्मित भाववाचक संज्ञाएँ
क्रिया शब्दों से निर्माणा
शब्द लिं

मयम

सर्वात्म-

पुरुष वाचक सर्वात्म
सम्बन्ध वाचक सर्वात्म
निश्चय वाचक सर्वात्म
अनिश्चय वाचक सर्वात्म
वशि प्रत्ययवाचक सर्वात्म
वाचर शब्द सर्वात्म

क्रिया

पर ली
सम्बन्ध
निष्कर्ष

प्राथम्य

‘उन्नायनी पि ग्रीवाभ्याः, आकर्ण्युत कोसलाः ।

तथापि पाणिनीयं हि पूर्वं आकर्णं स्मृतम् ॥”

हिंदी भी भाषा के साहित्य की सक्ति की अभिवृद्धि के लिए उस भाषा के आकर्ण का निर्माण बलि आवश्यक है। यद्यपि भाषा का निर्माण बलि आवश्यक है। यद्यपि भाषा प्रवाह व्यापि और व्याप्य है तथापि आकर्ण भाषा के का प्रवाहित होते में स्फुटि एवं स्वाधिक्य सक्ति का संसार करता है। जिस प्रकार साधन के पुनरुत्थ के लिए नियमों की आवश्यकता अनिवार्य है। उही प्रकार भाषा की संस्कृति के परिवार के निमित्त तथा भाषा में स्वाधिक्य एवं व्यक्तित्वहीनता होने के लिए आकर्ण नियमों की आवश्यकता अतान्वय वांछनीय । आकर्ण ही एक प्रकृत एवं सर्वोत्तम सा साधन है जो भाषा की दीन सक्ति प्रदान करने की सामर्थ्य है सम्पूर्ण है। आकर्ण के इस कर्तव्य के कारण ही में परिकीर्ण हिन्दी की दो प्रकृत कर्तव्यपूर्ण नीतियों क्रमात्मा एवं उही नीती का सुलक्षण आकर्ण लिखी की प्रकृत हुआ। बाव उही नीती का साहित्यिक रूप राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित होता है, अतान्वयी तत् क्रमात्मा के लिए गीत प्रत्येक स्वाधिक्य पूर्ण भाषाओं का सुलक्षण अत्यन्त साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से उपकीर्णी है। क्रमात्मा के साहित्य एवं आकर्ण पर तो कभी दुर्लभ प्रकृत हुए भी है किन्तु उही नीती का नीम तो कभी तक अज्ञात ही है।

आकर्ण के नीम में विशेषकर क्रमात्मा एवं उही नीती में सुलक्षण

व्याकरण का प्रणेत्या ब्याप है। परा यह प्रयास भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सर्वोत्तम, नीतिगत बनी में परीक्षाएँ तथा बनी हों का उत्प्रेरक है। फिर भी बहूविध संभव है।

यह पारम्परिक एवं भारतीय विद्वानों ने व्याकरण पर स्वतंत्र रूप से ग्रन्थ लिखी। पारम्परिक विद्वानों में वीरभट्ट का वाचस्पति काव्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, शान्ति का गौडिय भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण तथा केशव का हिन्दी व्याकरण अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु प्रथम दोषों व्याकरणों का विषय सीधे विस्तृत होने के कारण किसी भी भाषा के व्याकरण का सम्यक रूप में विस्तृत विवेक न हो सका। समस्त हिन्दी भाषा को बोलियाँ हैं सम्बंधित होने के कारण केशव के व्याकरण में किसी भी बोली के व्याकरण का समीचीन विवेक नहीं हुआ है।

भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे हिन्दी व्याकरणों में पं० कामता प्रसाद गुरु का हिन्दी व्याकरण, डा० पीरेन्द्र वर्मा का ब्रजभाषा व्याकरण एवं हिन्दी भाषा का इतिहास तथा किशोरोदास चौधरी का ब्रजभाषा व्याकरण एवं हिन्दी उच्चारणविज्ञान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। किन्तु इनमें भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का सर्वोत्तम ब्याप है।

अतः इस ब्याप की व्यापकता पूर्ति के हेतु मैं ने इस क्षेत्र में पर्याप्त करने का प्रयास किया। विषय की दृष्टि को दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में ब्रजभाषा की उत्पत्ति एवं विकास का संक्षेप काव है और सम्यक विस्तृत विवेक प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में लड़ी बोली की निरूपित एवं विकास पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

तृतीय अध्याय में अवन्ति के व्याकरण रूपों के ब्रजभाषा के व्याकरण रूपों का तुलनात्मक विवेक द्वारा विकास-क्रम प्रस्तुत किया गया है।

पहले बध्याय में बसंत एवं छड़ी बीसी का पुनरात्मक विवेक प्रस्तुत किया गया है। पंचम एवं अष्ट बध्यायों में क्रमशः क्रमाभा एवं छड़ी बीसी के प्रकाशित साहित्य का संश्लेष विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम बध्याय में क्रमाभा एवं छड़ी बीसी के विचार क्रम व्याकरण रूपों एवं भाषा सम्बन्धी विशेषताओं के साम्य वैषम्य का निर्देश करते हुए विस्तृत पुनरात्मक बध्याय प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार सात बध्यायों में दोनों भाषाओं के सम्पूर्ण व्याकरण रूपों को विस्तृत विवेका की गई है।

प्रस्तुत शीघ्र-क्रम्य भी तीन वर्गों के पीर परिणम का परिणाम है। इस समय की भाषा में वे प्रसिद्ध भाषा शास्त्री एवं विषयाधिकारी विद्वानों- आपार्य डा० स्वामी प्रसाद द्विवेदी, डा० भीरन्ध्र वर्मा, पं० पिछोरी दास दाक्षीनी आदि महानुभावों से समय समय पर मिलता रहा हूँ। उनके उत्कीर्ण सम्पादित एवं सुकर्मों से समुचित लाभ उठाया है। इसके द्वारा मार्ग में जाने वाली कठिनाइयों एवं विषय सम्बन्धी शंकाओं के समाधान करने में समर्थ हुआ।

वे ३ शीघ्र क्रम्य में क्रमाभा एवं छड़ी बीसी के साहित्यिक रूप के साथ शीघ्र रूप की भी किया। तबसे दोनों भाषाओं के बीच में दूर दूर कर सम्पत्ति संकलित की है।

इस शीघ्र क्रम्य का मेरा भी परम, पवित्र, पूज्य गुरुवर श्रीकेसर डाक्टर हरकंत साहू जी स्वर्ग, बध्याय संस्कृत-हिन्दी-विमान मुस्लिम विरवविवालय, कसीनद की है किसे बाद हस्त को ज्ञाया में यह व्याकरण सेवा बीरस पीना रहा ही एका बीर उन्हीं के धिक्क, प्रेरणा, निरिक्ष में बीर वत्सुवा के कारण यह पाठ्य परसहित एवं पुष्पित होकर वर्तमान रूप की प्राप्त हुआ है। उनकी इस महत्सुवा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उन्ही महत्स की कर्म करना है।

कसीनद नगर में हिन्दी टावर की सुखमस्वा न होने के

कारण टाइटल सम्बन्धी छुटियों के लिए मैं जाना प्राणी हूँ। टाइटल कार्य के लिए भी रामेश्वर क्वाटर सम्बन्ध के पास हैं। मैं भी कड़ी प्रयास की उम्मीद है, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ का पुस्तकें बाँटि की भी कई सहायता के लिए प्रयत्न है प्रयत्न हूँ। अन्य मैं मैं उन सभी महानुभावों का आभारी हूँ जिनके सहयोग एवं प्रयत्नों की सहायता है इस कठिन यात्रा की सम्पन्न कर रहा हूँ।

अलीगढ़ विरवविद्यालय,

मैंदा लाल उमा

अलीगढ़

दिनांक बुध, १६५६ ई०

प्रकाश व्याप

उत्पादन की उत्पत्ति एवं विकास

पुनः माया का उद्भव और विकास

वफ़ात और वास्तविक वाय मायावाद-

वास्तविक वाय मायावाद की उत्पत्ति के विषय में निश्चित रूप से कोई विधि निर्णय करना मुश्किल है। वास्तव में ऐसा कि राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि " प्राकृत की वस्तुतः वफ़ात वाय है ही हिन्दी-साहित्य का वाय-माय माया वाय है। " परन्तु वफ़ात मायावाद की वस्तुतः वफ़ात का निर्णय करना भी एक बटिख प्रश्न है। इस विषय में विद्वानों के बीच मत हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने विज्ञ की ग्यारहवीं सताब्दी में हिन्दी के पुनः रूप की कता है - " वफ़ात का प्राकृतमाय हिन्दी के फाँ के सबसे पुराना पता साहित्य और योगमायों की साहित्यिक रचनाओं के भीतर विज्ञ की सातवीं सताब्दी के वस्तुतः वाय में कता है। पुनः और वाय के समय वफ़ात १०५० के काल में ही रही वफ़ात या पुरानी हिन्दी का पुरा प्रचार ह्य साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है। लारे ने वफ़ात का वस्तुतः काल १२०० ई० माना है। टैडीटरी ने इस व्यापक काव्य माया की लीला कर वफ़ात और फात वफ़ात में कत किया है। टैडीटरी ने वफ़ात का काल १३वीं की वफ़ात सताब्दी से ग्यारहवीं सताब्दी तक माना है। वफ़ात की रचनाएँ फिती न फिती

१- वायार्थ रामचन्द्र शुक्ल ' हिन्दी साहित्य का इतिहास ' हटा संस्करण पृ० ३

२- कही

३- लारे - " हिन्दी साहित्य का इतिहास " पृ० ३०

रूप में चौदहवीं और पन्द्रहवीं सताब्दी तक होती रही है।

अतः अफ़्ग़ानि की सनाथि और बाहुनिक कार्य भाषाओं के स्वल्प प्रयोग के बीच का समय भारतीय कार्य भाषा के विकास का भी बहुत अव्यष्ट काल है। निश्चित रूप से यह सब समझने का कोई कदाचित् सार्थक उपलब्ध नहीं है कि कदा भाषा के स्वल्प में अफ़्ग़ानि का एक काल भी रहा और का कार्य भाषा दिल्ली अपनी विशेषताओं से पूर्ण होकर अस्तित्व में आई। विकास एक साम्य भाषाओं का बाधित्व बना रहा और फिर बहुत समय पश्चात् उन्हें साहित्यिक भाषा के रूप में व्यक्त होने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ। यद्यपि कदा भाषा के रूप में अफ़्ग़ानि की स्थिति नहीं थी फिर भी बहुत समय तक अफ़्ग़ानि में साहित्य रचा होती रही और बाहुनिक भारतीय कार्य भाषाओं की प्राचीन रचनाओं में भी अफ़्ग़ानि रूपों का प्रयोग होता रहा। परन्तु बारहवीं सताब्दी में बाबाय समकाल का अफ़्ग़ानि आकरणा लिखा जा कर देता है कि उनके समय तक अफ़्ग़ानि भाषा साहित्यिक भाषा ही नहीं थी और कदा भाषा का स्वल्प बारी विकसित ही हुआ था।

बारहवीं सताब्दी के अन्त तक अफ़्ग़ानि पूर्णतया साहित्यिक बहिः-व्यक्ति की भाषा बन गई थी। और उसी की छद्म ही वर्ण पूर्व ही अफ़्ग़ानि के कदा भाषा के बीच से प्रकटः पड़े तथा अन्य भाषाओं के उसका स्थान लेने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। समकाल ने ग्राम्य भाषा के द्वारा का विकसित होकर कदा भाषा की ओर लक्ष्य किया है :-

‘महता हुआ तु मारिया बहिणि मारा कदा

उत्तम तु अहिण्ड बह मया पर रम्ह

यस विकसनीय भाषा का साहित्यिक रूप १५ वीं - १६ वीं

सताब्दी से पहिले प्राप्त नहीं होता पर सदा परिपक्वनीय या संक्रान्तिशील रूप

११ वीं छाया भी हो मिली जाता है। अफ़स़ मन्थों में संक्रान्ति-मासीन भाषा के रूप की देखा जा सकता है। भाषा का रूप देह में है विन्न विन्न प्रकार का मिलता है। इन मन्थों में वह रूप देहा वा सकता है। "प्राकृत-मैत्र" "पुरातन प्राम्भ संज्ञ" "उक्ति व्यक्ति प्रकरण" "वर्णरत्नाकर" "कीर्तिता" "कर्म" तथा "ज्ञानेश्वरी" जादि सम्बन्धित तथा "प्राकृत मैत्र" के कुछ पदों में उदर पश्चिम की उक्ति व्यक्ति प्रकरण में जीवत प्रेक्ष । वास्तविक रूप ही । की तथा प्राकृत मैत्र के कुछ पदों वर्ण-रत्नाकर "कीर्तिता" तथा "कर्म" में प्राच्य प्रेक्ष की ज्ञानेश्वरी में महात्मा प्रेक्ष की संक्रान्ति-मासीन प्रवृत्तियों का परिचय मिल जाता है। यह भाषा कुछ और साहित्यिक भाषा के बीच की कड़ी कड़ी जा सकती है। आज अफ़स़ भाषा का पश्चिम साहित्य प्रकाश में आया है। और अफ़स़ साहित्य के विकास और हिन्दी की ऊँच कई सीधे प्राम्भ भी मिले जा चुके हैं। परन्तु अभी तक काफी साहित्य ज्ञात और अफ़स़ाहित ही है। अफ़स़ के रूप वैविध्य के कारण कई उपेक्ष मिले हैं।

काफ़ी, छाटे, कर्म उपकार नागरी ।

वावर, अन्त्य, पाषाण, ताक, मात, कैमर, गीठीड, वेष्णामात्य पाच्य जीन्तल विविता, कालि, प्राच्य, कारणाट, कर्म, काफ़िड, गीर्वर, वागीर, मध्यमहीन प्राम्भ में अवस्थिताः ।

उपनिषत्प्राम्भ देतावादि प्रेक्षतः ॥

तथापि काफ़िड, छाटे कर्म, उपकार, नागर, वावर, अन्त्य, पाषाण, ताक, मात, कैमर, क गीठ, गीठ, पाषाणमात्य, पाच्य, जीन्तल, विविता, कालि, प्राच्य, कारणाट, कर्म, काफ़िड, गीर्वर वागीर,

मध्यमहीन, बेतालादि, नाना भेदों से २० प्रकार की वफ़्तें होती हैं।

यह कौकिल नमि साधु और मार्कण्डेय का है। मार्कण्डेय ने नगर वफ़्तें का विवेक विस्तार से किया है। एवं उपनगर के लिए एक नूतन विधान किया है। मार्कण्डेय के अनुसार सात वफ़तें पितृ देव की मान्यता थी।

बाहुनिक विद्वानों ने वफ़तें का कौकिल सीरीय आधार पर किया है :-

डा० यादवी ने 'जातकुमार वसिष्ठ' की प्रणित में वफ़तें के पूर्वी, पश्चिमी एवं दक्षिणी उद्गरी सावि नार विधान किए हैं। किन्तु यह कौकिल का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। डा० लारी ने यह कौकिल की दोन-पूर्ण माना है और अपनी पत्र की पुष्टि में कुछ तर्क उपस्थित किए हैं। उनका प्रसंग तर्क यह है कि उद्गरी वफ़तें में कोई रक्षा उपलब्ध नहीं है और जो है वह भी बहुत समय बाद की है। उन्होंने वफ़तें के तीन भेद किये हैं जो इस प्रकार हैं :-

१- पश्चिमी वफ़तें-

यह मान्यता प्रायः उन विभागों में प्रचलित थी जो बाघ चिन्वी, गुजराती तथा राजस्थानी के क्षेत्र हैं। यह मान्यता तीन डा० गिदकी ने अपनी 'सिन्धु-वैदिक एवं बाक' लिखित' प्रकाशित प्रकाश नाम में मान्यता सीरीय का तीन माना है।

२- दक्षिणी वफ़तें-

मुख्यतः मराठा-सीरीय क्षेत्र की मान्यता है जिसके अन्तर्गत मराठा-सीरीय तथा मराठी सीरीय बाघ नामपुर के बाघ-बाघ के प्रान्त सम्मिलित हैं।

१- मार्कण्डेय, प्राकृत एवं ७

२- डा० लारी - सिन्धु-वैदिक नाम बाघ वफ़तें - पृ० १६

३- डा० गिदकी - सिन्धु-वैदिक एवं बाक लिखित प्रकाश नाम पृ०

१- पूर्वी वपश्चिमी-

मुख्यतः काय देश की भाषा थी जो प्रायः बंगाल बिहार तथा उड़ीसा भाषी लोगों में प्रचलित थी।

डा० ग्रियर्सन के अनुसार प्रत्येक प्राकृत का एक रूप था। शौरसेनी प्राकृत शौरसेनी वपश्चिमी की कम्पाणा की कानी कनी, मागधी प्राकृत का मागधी वपश्चिमी, नवाराष्ट्री प्राकृत का नवाराष्ट्री वपश्चिमी आदि। परन्तु प्रमाणाति साहित्य की कड़ी पर मानने से यह बात सही नहीं लगती। डा० कारे ने कम्पा वपश्चिमी रचनाओं का समय एवं स्थान के अनुसार वर्गीकरण किया है।

पारमात्य वपश्चिमी

क्रम	रचना	विधि	पौर
१- काजिमास	विज्जयिणी के चतुर्थ वंश के पद	छंदों की पाँचवीं शताब्दी	माज्जा
२- जीम्व जीम्व	पारमात्या प्रकाश तथा जीम्वार	६ से १० वीं शताब्दी	—
३- वपश्चिमी	काय वपश्चिमी	६३३ ई०	पार
४- मागधी	मागध वपश्चिमी	१० वीं शताब्दी	राजप्रधाना
५- वपश्चिमी	वपश्चिमी नव वपश्चिमी	१० वीं शताब्दी	माज्जा
६- वपश्चिमी	" वपश्चिमी वपश्चिमी "	१० वीं शताब्दी	गुवराज

१- डा० ग्रियर्सन - विज्जयिणी वपश्चिमी काय वपश्चिमी भाग ७

२- डा० कारे - विज्जयिणी वपश्चिमी काय वपश्चिमी भाग १०-११

७ - शेष	सरकारी कंठाकरण में संशोधित		
	अपेक्षित फल	१००० से १०५०	पाकना
८- विवरण	करीबो तथा उपरीछतरगिरी	"	"
	अपेक्षित मापदण्डों में संशोधित		
९- उत्पन्नगिरी	अपेक्षित फल सुपाकना करिमा में	११४२ के	दुधरात
१०- हरिमा प्रारि	कान्हापुर करिमा	११५६ के	दुधरात
११- रीमकण्ड	विश्व रीम तथा कुनार पाठ करिमा	१०८८ के ११०२	दुधरात
१२- जीम प्रारि	कुनारपाठ प्रतिनीय	११६५	दुधरात

उपरोक्त कुछ रत्नाओं के समय एवं स्थान के विवरण में मतभेद रहा है।

परन्तु डा० तारि तथा उपरोक्त के विरोधी मतों का सम्मेलन किया है।

परिणामी अपेक्षित-

यह कार्य भी पूर्णतः पूर्ण होकर नष्टपूर्ण है।

क्रमांक	रत्ना	स्थिति	स्थान
१- पुष्पदन्त	महापुराण नकुनार करिमा	५५५	मान्वापिट
	जय करिमा करिमा	५५५-७२	"
२- कनकापार	कलसंड करिमा	६७५-१०२५ के	बस्ती नगर

डा० तारि ने इन कार्यों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं की

१- २० एवं २५ वर्ष - परमात्मा प्रकाश जीम तार पु० ५६ ई०

प्रकट करने का एक प्रौद्योगिक प्रयास किया है। बाकी कुछ उता पर और जिना पर सीधे
मिलाने हैं जो परिष्करी वक्त्रों से चिन्मता रहते हैं।

वशिष्ठी वक्त्रों की विशेषताएं -

भाषा - विशेषज्ञों के मतानुसार वक्त्रों मध्य भारतीय भाषा भाषा
के विकास का अन्तिम सीमान है। यह वह सीमाभाषा रही जो अत्यंत उच्च पर्य में सर्व
साधारण की भाषा थी। अतः आज उपलब्ध वक्त्रों साहित्य में भाषागत यह बहुत कम
विस्तार है।

महामोपाध्याय पीछे गौरी शंकर शीखा ने अपनी
पुस्तक 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' में वक्त्रों का प्रकार ताट, कुबरात, पौराण्य,
कम्प, मारवाड, वशिष्ठी फाव रावप्रताप, कम्पों और मन्वसार बादि में स्वीकार
किया है। विष्णुकाधिर ने देहली से वक्त्रों के तीन भेदों की कल्पना की है।

ज्याहद्यों रही में नामें साहु में वक्त्रों के तीन भेद माने हैं:-

१- उपानर

२- बागीर

३- काव्य

परन्तु कथाकारों ने कम्पों तीन भेदों की मानर, उपानर, काव्य की उता प्रान

१- डा० तारि - 'विष्टारिक्त नामर बाव वक्त्रों पृ० १६

२- डा० उदयनारायण तिवारी 'हिन्दी भाषा का उच्च और विकास'

३- प० म० गौरी शंकर शीखा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

४- विष्णु काधिर 'देह भाषा विशेषण तस्यान्ती नव विष्टे' विष्णु ३॥

की है। जयजी लताबदी के प्रसिद्ध बयानकार ने यह भी लिखा है कि ये विभिन्नताएँ
 स्वीकृत हैं। डा० लता ने भी इन पर पश्चिमी प्रभाव माना है। वस्तुतः कुलात्मक
 दृष्टि में भविष्यन्त क्या तथा क्यापुराण की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है।
 दोनों की रचनाएँ परिमिश्रित हैं जो इस दृष्टिकोण से ही पूर्णतः स्वाभाविक हैं।
 अतः यही निष्कर्ष उचित है कि दक्षिणी अफ्रीक नामक पुष्क सीरीय अफ्रीक की उदा
 निराधार एवं आवश्यक है।

पूजा अफ्रीक-

लोक	रचना	तिथि	दीर्घ
कान्ध	दीर्घा-कीर्ण	७००-६२०० ई०	मंगल
धरादया	दीर्घा-कीर्ण	१००० ई०	मंगल

पूजा अफ्रीक की भाषाएँ वस्तु में कान्ध के दीर्घा-कीर्णों पर
 आधारित हैं। डा० लता ने भी 'प्राकृत फील्ड' उचित अन्तः प्रकरण तथा विवापति
 की 'कीर्तिता' एवं 'कीर्ति मंगल' की अपनी विचार दीर्घ दीर्घा है प्रकृत है।
 'वर्णन' अन्तों की एकस्मयी भाषाएँ हैं। जिसकी संस्कृत भाषा उपलब्ध न होने के
 कारण अब की स्पष्टता नहीं हो पाती।

डा० लता ने पूजा अफ्रीक की भी स्वीकृति निवारित की है वे
 ती ठीक हैं परन्तु हम उनकी यह बात है समझ नहीं हो सके कि इनके आधार पर कोई

१- मारकण्डेय - प्राकृत अन्वय ५० ६

२- डा० लता 'विस्तारित नामर नाम अफ्रीक' १६

पुर्वी वपुर्ग की कल्पना की जा सकती है। दोनों दीर्घा जीर्णा में कही नीली है किन्तु परिशिष्टित होती है जो पारम्पर्य कथा हीरेणी वपुर्ग में प्राप्त है। वस्तुतः दीर्घा जीर्णा की रचना बहुत कुछ परिशिष्टित वपुर्ग में हुई है जो पक्षी माना जाय। यह सत्य है कि उनमें कहीं कहीं पुर्वीय दृष्टिसे ही होता है।

वर्षाफर्मा में दीर्घा जीर्णा को बपिता बपिक पुर्वीय है और का साधारण की भाषा में लिखे जाने के कारण यह स्वाभाविक भी था। साहो दीर्घा की परिष्क की परिनिष्ठित भाषा में कथा कथा साम्बो का की स्थानीय पुर्वी नीली में करने की परम्परा कभी तक चली रही। विद्यापति ने अपनी भाषा की कल्पना की है।-

“ वैद्य कथा का नाचिटा

सिद्धि कथा कल्पिता ॥ ” १

“ उचित व्यक्त प्रकरण ” के लेखक बानीपर ने सामान्य रूप से ही वपुर्ग के नाम से उल्लिखित किया है।

साहित्य की भाषा में प्राचीन और पारम्पर्य का अन्तर प्राकृत काव्य से ही कहा जा रहा था। कथा की दृष्टि-सेत ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। श्रीधर डा० तार ने त्रिकीय कीर्ण किया है वह पुर्वतः ठीक नहीं है। यह त्रिकीय में पक्षिणी वपुर्ग का भेद कल्पना मात्र है। पुर्वी वपुर्ग का भेद वास्तविक है। पुर्वी वपुर्ग की कमी विवेकताही। वर्षाफर्मा में उल्लिखित है। यद्यपि वपुर्ग में यह वैधानिक रूप हीनतम भेद या तथापि वपुर्ग का परिनिष्ठित रूप एक था।

१- विद्यापति कीर्तिका

२- उचित व्यक्त प्रकरण पुष्पिका

यह वह उत्तम उदाहरण है प्रसिद्ध साहित्यिक भाषा की। यह मध्यमस्थ शैली है प्रभावित था। प्रसिद्ध वैचारिक रूप में 'हैम शैली' कहकर भी इसे का उचित किया है।

डा० नामदार सिंह ने यह परिनिष्ठित तथा साहित्यिक भाषा का उदाहरण पश्चिमी प्रेसों की शैली का माना है। जो ऐतिहासिक दृष्टि से शैली परम्परा में थी।

परिनिष्ठित शब्दों की विशेषताओं की शैली है इस भाषा के स्वरूप का स्पष्ट आभास मिलती जाता है।

वैचारिक तथा शैलीय भाषा के अतिरिक्त शब्दों का एक परिनिष्ठित रूप भी था, जिसका उदाहरण पश्चिमी प्रेसों की शैली थी। जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी शैली प्राकृत की परम्परा में आती थी। जिसे कुछ विद्वानों ने शैली शब्दों तथा शब्दों में पश्चिमी शब्दों कहा है। तथा अभिप्राय: यह है कि शैली तथा पश्चिमी शब्दों ने शैली प्राकृत की विशेषताएँ ग्रहण करने के साथ साथ कुछ नवीन विशेषताओं की भी शुरुआत की है। शब्दों की अतिरिक्त अति सम्पन्न विशेषता उनके शब्दों की शिथिल शैली पर निर्भर है। उदाहरण के भाषा के आधार पर जो अतिरिक्त भाषाओं ने शिथिल शैली से कुछ समझाओं की व्यक्त किया है। उनके अन्तर्गत भी की कई विशेष आवश्यकता नहीं है।

शब्दों का यह वर्गीकरण हमें वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर दिया है। वर्गीकरण के माध्यम से हमें यह है कि डा० ना० शर्मा भाषाओं की उत्पत्ति निम्न

१- शैली

२- डा० नामदार सिंह 'हिन्दी के विकास में शब्दों का योग' पृ० ४२, ४३

१- व्यन्जन स्वर का उच्चारण व्यन्जन प्रकाश और त्रितीय विभक्ति में संज्ञा 'वी' का 'उ' ही जाता है। यही वेदु ।

'व' में स्वर सम्बन्धी प्रगति भी परिवर्धित होती है। उनमें

प्रसूत ये हैं :-

क- उपान्म्य स्वर की प्रायः रक्षा की जाती है।

ख- प्राकृतों से प्राप्त हज्जों में प्रायः वापि अपार तथा स्वर की याथा पुराणित होती है।

ग- हज्ज के बीच य, य, व, व और कौ कौ 'क' के जगन तादा उपान्म्य स्वरों का प्रसूत वस्तित्व पुराणित किया जाता है।

घ- व्यन्जन साहित्य में प्राकृत के अनुसार क, ग, य, व, ल, द और व भी ह्रास की जाती है।

ङ- सामान्यतः व्यन्जन में संज्ञा र के उच्चारण की प्रगति दृष्टिगोचर होती है।

इसी प्रकार व्यन्जन निर्माण की दृष्टि से भी व्यन्जन नामानों में पर्याप्त भेद स्थापित होता है।

१- उच्चारण के लिए व्यन्जन में केवल व्यन्जनान्त पुलि प्रातिपदिक की रक्षा थी।

२- उच्चारण लि के प्रायः ह्रास की रक्षा का और वस्तुतः लि की व्यन्जनता ह्रास की गयी थी।

३- कारक विभक्तियाँ व्यन्जन में बाहर केवल तीन हज्जों में सम्मिलित

की नहीं

प्रकाश में

प्रकाश, द्वितीय और तृतीय ।

द्वितीय में

द्वितीय और तृतीय ।

तृतीय में

पहली, दूसरी, तृतीय ।

जैसे परिणाम स्वयं का संस्कृत में एक हस्त के स्वकीय रूप
होती है वहाँ प्राकृत में भारत में और फिर वफ़ात में बाहर का एक रूप नहीं।

वफ़ात में जोड़ स्वयं हस्तों का प्रतीक प्रतीक की भाँति किया
गाने लाता। वे ही द्वितीय के लिए हैं, वस्तु तथ्य तथा पहली के लिए हैं, पहली
के लिए हैं, द्वितीय, तृतीय, फिर बापि तृतीय के लिए हैं, कर, कर, का, की, के
और तृतीय में के लिए मजकूर, मई बापि ।

जो भाँति वफ़ात पाठकों के सिद्ध रूप मुख्यतः हस्त, जोड़ और
हुट छात्रों में ही होती है और तथ्य छात्रों के रूप प्रायः कृत्यत्व होने लाता। वफ़ात
में हस्त सामान्य प्रतीक के रूप प्रायः संस्कृत के पिछले सुखी हो गये- वे ही

उत्तम पुरुष करत करत

मजकूर पुरुष करति करत

कर्म पुरुष करत करत

संस्कृत 'कर' प्राकृत 'कर' के स्वकीय स्वयं वफ़ात में 'कर' और
ह ही नहीं, करितक, करितक ।

पुनः कालिका क्रिया के प्रत्ययों में ही वफ़ात में केवल ह ही तथ्य
रह गया।

परिकी सभा सीसी वस्तु के परिनिष्ठ रूप की उन मुख्य प्रुधियाँ हैं जो निम्नलिखित हैं।

१- जो भारतीय कार्यवाही संसुत और प्राकृतिक रूप में परिनिष्ठ की वह वस्तु है जो- जो परिनिष्ठ होने लगी। वह जो वस्तु भारतीय कार्यवाही की परिनिष्ठ- परिनिष्ठ अवस्था के बीच जो रूप में पायी जाती है।

२- वस्तु है संसुत प्राकृतिक की जो निम्नलिखित प्रमाण या व्याकरणिक भाषा नहीं है। इसका कारण जो वस्तुकरण की प्रुधि जिसे वस्तु की व्याकरण के वस्तु निम्नलिखित के रूप में वस्तु नहीं दिया और जो वस्तु प्रमाण होने लगे विकसित होने लगी जो- जो कार्य भाषाओं पर जो पड़ा।

कार्य भाषाओं के विकास की दृष्टि है वस्तु के पार की है

प्रुध है :-

कार्य वस्तु-

जो निम्नलिखित भाषा विकसित हुई।

सीसी वस्तु-

जिसे परिकी निम्नलिखित वस्तु वस्तु, वही जो, प्रमाण, निम्नलिखित वस्तु निम्नलिखित भाषा विकसित होती है।

कार्य भाषा वस्तु-

जिसे प्रुध निम्नलिखित वस्तु वस्तु वस्तु, वही जो

विकसित हुए।

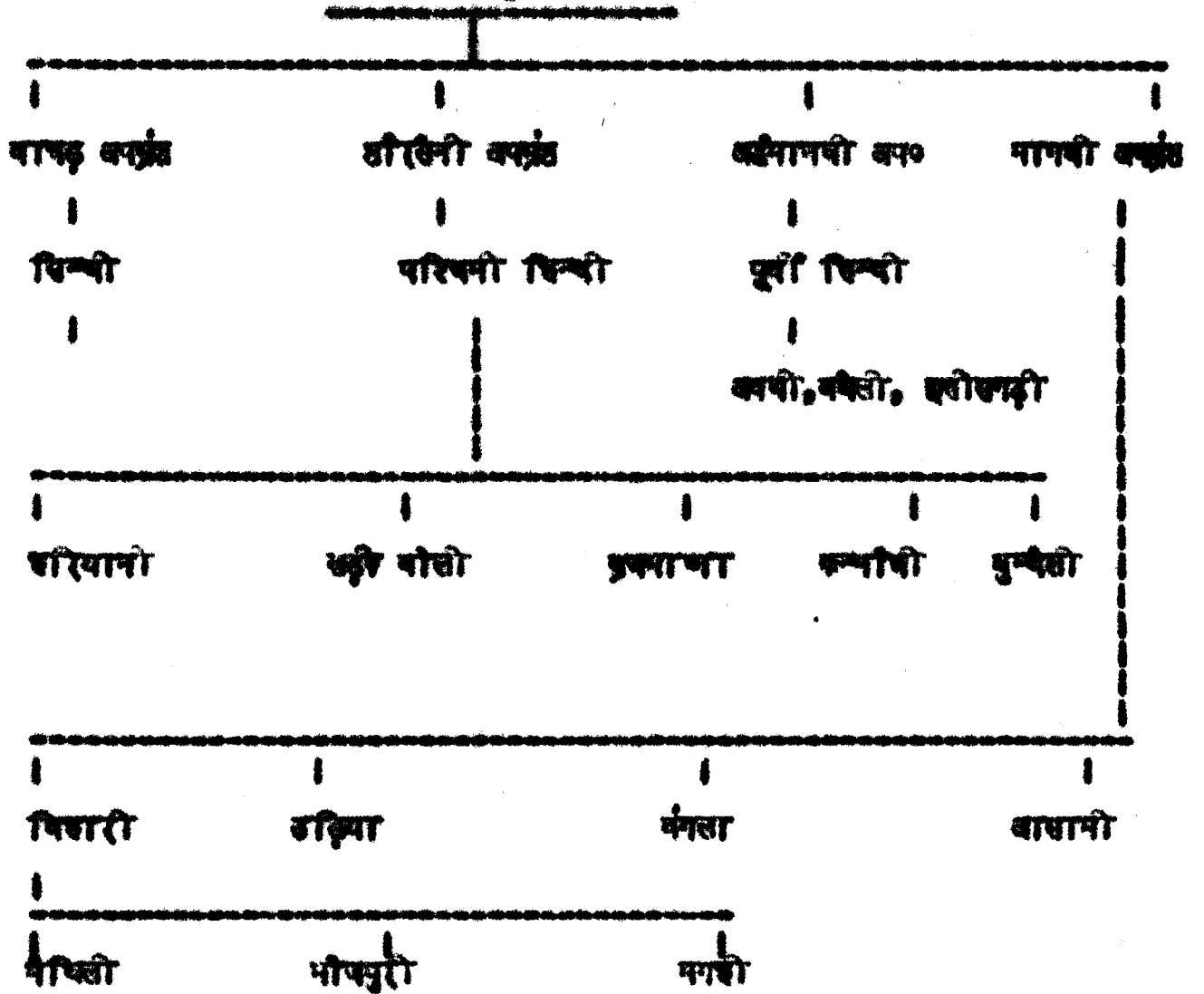
मागधी कथं -

विहारी जिसकी उत्पत्ति - भयिही, भयपुरी, मारी हैं।

उड़िया, कंठा, बागेली भाषाएँ विकसित हुई हैं।

सारणी द्वारा उन्हें यह प्रकार बताया जा सकता है।

विभिन्न प्राकृत भाषाएँ



यह प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न वर्गों की जापसी स्थायी के कारण है ही वास्तविक भारतीय कार्य भाषाओं की युक्तता स्पष्ट होने जाती है। नया राष्ट्रीय वर्ग है कमाना सभी नौवीं वर्गों तथा वैश्वी नीतियों की विवेकपूर्ण स्पष्ट होने जाती है। भारतीय कार्य भाषाओं का यह राष्ट्रीय पैदा प्राकृत काल के राष्ट्रीय पैदा है उर्वर भूमि था। शैक्षणिक कारणों से पता चलता है कि विभिन्न भारतीय कार्य भाषाओं का उच्च वास्तविक नहीं हुआ। यह सचियों के काल परिलक्षित का फल था। भाषा के निर्माण में कोई भी छोटा या बड़ा वास्तविक परिलक्षित शैक्षणिक प्रान्ति नहीं का करता। भाषा के बीरे बीरे छोटे छोटे परिलक्षित स्थायित्वों का एक एक बीरे बड़े प्रतीत होने जाती है। और ही कारण है भाषा का एक वर्गों हुए मातृन पड़े जाती है। वास्तविक विन्दी नीतियों के बारे में भी यही कहा जा सकता है।

वास्तविक भारतीय भाषाओं का उच्च एवं विकास वर्गों के बीरे ही बीरे बीरे छोटी वर्गों का छोटा रहा, एक वर्ग वर्गों के प्राचीन रूप पुनर्वाते हुए और पुनरी वर्ग वास्तविक भारतीय भाषाओं के नये रूप प्रकृत किये जाते रहे, और यह प्रकार प्राचीन रूपों के छोटी तथा नवीन रूपों के प्रतीत करने की प्रवृत्ति है वास्तविक भारतीय भाषाओं का उच्च हुआ। सभी विस्तार है वर्ग विस्तार गया है।

स्थानीय नीतियों के उच्च के हेतु-

कि स्थानीय नीतियों का विकास साहित्यिक भाषा के रूप में

हुवा उनमें मुखरती मराठी एवं मोजा प्रमुख हैं। अफ्रीका के समय से ही उन प्रौद्योगिक एवं सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से उन्नत होने लगा था। उन प्रौद्योगिकी के साधनों ने संस्कृत की अपेक्षा लोक-जीविताओं की सर्वप्रथम प्रकृतिगत प्रगति की। इस प्रकार परस्पर वर्तमान होती हुए भारतीय संस्कृति ने मान्यता का उत्थान किया और मान्यता ने भारतीय संस्कृति की मूल विधा। यह सामान्य कारण के अतिरिक्त वाणिज्य के कारण मुखरती तथा राजकीय एवं सांस्कृतिक कारणों से मराठी और मोजा का उत्थान हुआ। यद्यपि वाणिज्यिकों ने इन दोनों मान्यताओं के विकास में विशेष सहयोग किया।

मध्यकालीन मान्यता का विकास अन्य प्रकार से हुआ। मध्यकाल की कोई एक साहित्यिक मान्यता नहीं थी। यहां बीच-बीच में छोटी-छोटी साहित्यिक जीविताएं बन गई थीं। विकास विकास की भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ। समय की दृष्टि से भी उनके विकास में कुछ फेर है। ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थानी तथा मेथिली जीविताओं का समय पहिले हुआ। अनन्तर बंगाली का। प्रभाषा एवं सही मोड़ी का समय बाद में ही है। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से प्रभाषा की सही मोड़ी से पहले ही प्रसिद्धि प्राप्त हो गई। प्रारम्भ में सही मोड़ी का विकास बंगाली न होने के कई कारण थे। प्रथम तो यह भाषाशक्ति से दूर दक्षिण की प्रभाषी होने का कारण था। दूसरे कारण में विशिष्टता के साथ में यह नहीं। तीसरे विशिष्टता का कारण का समय का समय का नहीं। चौथे सामान्य का समुदाय से दूर हो कर और परस्पर में ही प्रवीण हुई। उनके विपरीत प्रभाषा का ही प्रवृत्त होने के कई कारण थे। प्रथम उसका विकास उसी समय-भूमि में ही हुआ। उसे संस्कृत मान्यता की विकास परम्परा का आधार प्राप्त हुआ तथा वैयक्तिक रूप से प्रसार का माध्यम की। इसके साथ ही लोक-दृष्टि के प्रतिनिधि वक्तव्यों में यह अपनी भाषा-विधि की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

एक प्रकार मध्यम की तीन सीढ़ियाँ बननी, क्रमागत तथा सही सीढ़ी प्रत्येक सीढ़ी हुए भी प्रारम्भ में एक ही वादीय भाषा के रूप में विकसित हुई। अपनी ये क्रमागत में अपना अस्तित्व बिना कर एक वाक्य भाषा निर्माण में योग दिया। सही सीढ़ी क्रमागत के साथ ही साथ ऊँ के उपयोग से प्राप्त होती। एक क्रमागत परिनिष्ठित की वरु एक सही सीढ़ी का रूप अपनी भाषा और बहुत बाद एक सही सीढ़ी पर क्रमागत का प्रभाव पड़ा था।

एक प्रकार व्याकरण की दृष्टि से भी व्यंजन के सहाय्य अपनी के ऊपर सही सीढ़ी तक एक ही भाषा का निरन्तर परिवार और परिवर्तन होता रहा। ध्वनियाँ एक प्रयुक्त होकर बिना हुए प्रत्ययों में परिनिष्ठित रूप धारण किया। एक व्यंजन युक्त में हुए प्रत्यय बदल प्रत्यय की गति और हुए गति सम्बन्धित की गति। परन्तु पीछे बहुत व्यंजन के साथ व्याकरण का रूप प्रयुक्त की गया था।

काल्पनिक व्याकरण एवं व्यंजन विकार सम्बन्धी पीछे बहुत भी के सीढ़ी हुए भी अपनी क्रमागत तथा सही सीढ़ी एक ही हिन्दी भाषा के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। किन्तु मध्य प्रारंभ का वादीय विकास न होने के कारण एक सीढ़ी में किसी वादीय भाषा का विकास भी सम्भव नहीं हुआ। तकनीतिक और भाषिक व्यंजन-युक्त के हुआ। वादीय स्तर का कार्य नहीं तक ही सीमित रहा। काल्पनिक वादुनिक कि वादीय भाषा का निर्माण हुआ वह नहीं तक ही सीमित रही। अतः एक भाषा में विविधता उत्पन्न की गयी।

प्रत्यय विभिन्न में व्याकरण सम्बन्ध केवल क्रमागत और सही सीढ़ी से हैं। काल्पनिक एवं अपनी अवस्था की ऊँची सीढ़ी कभी तक ही सीमित होने का प्रभाव करती। एक ही सही सीढ़ी हिन्दी के विकास कार्य में जाती है उसे वादुनिक विचारों ने

परिकी या पक्षी हिन्दी का है।

परिकी हिन्दी का विकास ऐसा कि पक्षी का या हुआ है, होरली काल है हुआ और यह नाम खुदा के दुवाब की भाषा है। सभी पाँच नाम भीड़ों हैं।

१- कृपाया

२- हठी भीड़ी

३- हठी भीड़ी

४- कृपाया

५- हठी भीड़ी

प्रस्तुत प्रश्न में कृपाया पर विचार करना है।

कृपाया-

कृपाया की कृपाया भी कहते हैं। यह कृपाया की भाषा है। यह कृपाया की कृपाया है। क्योंकि गंगा खुदा का दुवाब बायीं की पक्षी भूमि होने के कारण कृपाया कृपाया का और बायीं की भाषा कृपाया। बायीं का कर यह कृपाया के नाम है अभिहित हुए। का: का नाम पर विचार कर लेता कृपाया न होगा।

कृपाया की विह्वल-

हिन्दी के "कृपाया" का उत्तर कृपाया "कृपाया" है जो भाषा की परिकी "कृपाया" का है जो भाषा। कृपाया के कृपाया में प्रकृत होती है। कृपाया

गण में 'उ' बाहु है 'कावयति' ल्य बाता है। उय बाहु में 'रुद्र' प्रत्यय लाकर कवन
हव्य ल्यो है वो कर्त्ता के कर्म के लिख नी लिखा गया है।

हिन्दी विश्व कीच-

कन, गन, बाना या कजा, कृत्त कुंठ, गीठ बादि ।

मयुता-मुन्वाक के बाह पाह का प्रान्तो वह भावान् नीकृष्ण का
हीला नीम है नीर लीलिख ली पवित्र माना गया है।

कृत सव्य बागर-

बाना, गन, कुंठ कृत्त मयुता के बाह पाह का प्रान्त ।

संश्लिप्त हिन्दी कृत बागर-

उय सव्य बाता, कजा, कृत्त कुंठ गीठ बादि के कर्म में प्रयुक्त हुवा
है।

१- कजाती । भा, पर, कृत्त है । कजाति ।

कृत्त संस्कृती गती । कुरादि, परलीकती, कृत्त, है ।

बाजपति, कृत्त ली कजाय, गजाय ।

कृत्त पु० । कजाती गीचरं कजाति

कृत्त ल्यक्य । कजा कजाभात । ११ १४६१२

२- हिन्दी विश्व कीच - भाग ११ पु० ४१९

३- कृत सव्य बागर - कृत संस्करण - नागरी प्रभा० बा० काशी

४- संश्लिप्त हिन्दी कृत बागर - पु० १०२१

कुवत् हिन्दी कोश-

कुठ, गोष्ठ, समूह, बाना, गोस्थान, विनाम स्थल, मार्ग,
सड़क, वापस/गोपी की बस्ती ।

प्रवारक हिन्दी शब्द कोश-

गमन, गति, समूह, गोपी का निवास स्थान ।

प्रामाणिक हिन्दी कोश-

बाना, बला, वृन्द, समूह, श्रीकृष्ण का छोटा पीत्र, मथुरा के
निकटस्थ ग्राम ।

हिन्दी शब्द सागर-

बहीरी का टोला या बाड़ा ।

भाषा शब्द कोश-

गमन, बला, वृन्द, समूह ।

संस्कृत कोश दिक्करी-

To go, to proceed, to pass away, to obtain, to wonder, go around
a flock (n) a cowpen, the name of a district.

१- कुवत् हिन्दी कोश- काशि प्रयाग- ज्ञान मण्डल बनारस पृ० १२६०

२- प्रवारक हिन्दी शब्द कोश- हिन्दी प्रवारक पुस्तकालय पृ० ७३१

३- प्रामाणिक हिन्दी कोश- हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस, पृ० १०४२

४- हिन्दी शब्द सागर- भा० प्र० समा० काशी

५- भाषा शब्द कोश- रामनारायण साहू स्थापना पृ० १२२०

६- संस्कृत कोश दिक्करी - लिंगीयन्त्र कीमती शब्द १२६६

संस्कृत शैलि डिक्शनरी-

away, Road,

कृषति

to go walk, proceed, move, wander stall,
cowpen, district around Mathura.

कमर-कोण-

क्री गोष्ठाब्ध, वृन्देणु गोधर संवर ।

प्राचीन वाङ्मय में 'कृ' शब्द का प्रयोग

सबसे प्रथम 'कृ' शब्द का प्रयोग प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में मिलता है। जिसका अर्थ पशु चराएगा वह बध्ना बाड़ा है।

“ उत वा मस्य वाजिनो नुविप्रमत्तदात
संगता गोमति कृषि ॥ ”

तथा- “ गोमति बहुभिर्भिर्युक्ते कृषि गोष्टे गता गमनशीली मति ॥ ”
ऋग्वेद में सभी स्थानों में प्रयुक्त कृ का गोष्ट का अर्थ गायों का

निवास स्थान किया है।

१- संस्कृत शैलि डिक्शनरी - सरमोनियर विलियम क्लेरेन्डन प्रेस - वाक्सफोर्ड
१८८६

२- कमरकोण - संपादक पंडित शिवदत्त - बम्बई पृ० २३०

३- ऋग्वेद प्रथम मण्डल - प्रथम वष्टक सूक्त अर्द्ध मंत्र ३ प्रथम अध्याय

४- ऋग्वेद प्रथम मण्डल - प्रथम वष्टक सूक्त - २८ मन्त्र १- ८ षष्ठ अध्याय

महाभारत-

महाभारत में 'कृष्ण' का कर्तृ वेद वाक्य न होकर बड़े बड़े लोगों वाली वाणी के कर्तृ के स्थान के रूप में ही किया है।

हरिवंश पुराण-

'प्राणि व मनुष्यस्तु कृष्णं कृपावरीक्षणीम् ।'

भीष्मपरायण पुराण-

'नन्द कर्षं हरिश्चित्तं तत्र तत्र नीयाम् । ४।६
प्रेम्णापरायणं निश्चयम् ।'

वायु पुराण-

'कस्य क्व वसति विष्णोः सहस्रम् ।'

पुराण वंशिका-

'कीर्त्यात्प्राप्त्याप्तं कृष्णान्तर्यामिणा
नाति दूरं कृष्णं न विध्यति निश्चयम् ॥' ३६।५

१- महाभारत १ ४०१० - १- ४० - १५ लापि

२- हरिवंश पुराण अध्याय ५ ।१-२। तत्र

३- भीष्मपरायण महापुराण वरुण स्कन्ध अध्याय ३

४- वायु पुराण विष्णु वंश वर्णन अध्याय ३४

५- पुराण वंशिका अध्याय १०

इसके अतिरिक्त कुकाणा कवियों ने कुज की वैश्वाण्व स्मृति में ही लिखा है जिसके अनुसार कवियों ने मयुरा गोपनी, कुम्हारक आदि विभिन्न स्थानों को रखा है। इसका नाम प्रहसन प्रसिद्ध है या जिसका प्रवीण रामायण, एक गोपनीयता पुराण और मनुस्मृति आदि में लिखा है।

कुज की सीमा निर्दिष्ट करते हुए कविधर्म ने लिखा है :-

“ कालीं कालीं है मयुरा का प्रसिद्ध नगर एक विस्तृत नगर की राजधानी था। जिसकी परिधि ८४ मील बताई जाती है। यदि यह कुमान प्रसी है तो मैराट्ट एलायन। और कालीं की सीमा भी कुज प्रसिद्ध में सम्मिलित है। वहीं मयपुर किरावली तथा बोरपुर निम्नलिखित रियासतों और ग्वाल्नर राज्य के कलराई के साथ मयुरा का बिस्म भी कुज में सम्मिलित है।”

क्राउन नदीयन ने मयुरा मैनीयर में कुज की सीमा का प्रकार निर्दिष्ट की है -

“तत् पराज्य उत्तरीय नद उत्तरीय की बाध,

कुज बोरली कीच में मयुरा बन्दित पारि ॥” २

छा० बोरलेय कर्मा ने कुज प्रसिद्ध की सीमा निर्धारित करते हुए

लिखा है :-

“यार्कि दुष्टलीय है कृष्णवर्ण की सीमा मयुरा जिले का सीमा है। किन्तु कुज की सीमा नीली का सीमा के नगर भी प्रसिद्ध होती है। इस प्रकार निम्नलिखित प्रसिद्धि में है।

१- मनु व्यासकी काव्य लिखित - कविधर्म पृ० ४२७

२- क्राउन - मयुरा मैनीयर पृ० ७

उपर प्रिय के मयरा बलीमद, वागरा, कुलपत्तार, पटा, कपुरी,
मदार्थ तथा बरीली के बिधि, पंजाब के मुहल्लान बिधि की पूर्ण सही मध्यमारा में ग्वाधिर
का पञ्चिमी भाग बाया है।

छा० प्रिन्टिंग ने मनीषा के छात्रों को भी प्रभावित कर दिया है। तथा कर्मावी को एक स्वतन्त्र नीती माना है। परन्तु छा० प्रिन्टिंग को भी कर्मावी को भी प्रभावित है। इस प्रकार उधर प्रीत पीछीपीत, छात्रावास, फरुखाबाद, सराई, छात्रा और कानपुर के विभिन्न भी इस प्रीत में सम्मिलित कर दिए गए हैं। छात्र विद्यार्थी का प्रभावना को भी निर्यास करने में सक्षम नहीं है। एक दृष्टि से व छात्र से छात्रों तक और कहीं तक से छत्र पीछुर और ग्वास्तिर तक इस प्रयत्न का विस्तार है। कहा जाता है कि यह जीव पर नीली जलवाती है। जहाँ जलवाती नहीं कि उच्चारण का यह मौलिक कारणों से छोड़ी छोड़ी दूर पर गहरा जाता है, किन्तु जलवाती की जल एक नीव में एक ही रहती है। इस दृष्टि से प्रभावना जिस नीव में किसी न किसी रूप में नीली जाती है। वह नीव प्रयत्न के अन्तर्गत आ जाता है। उसी दृष्टि से प्रयत्न का व्यापक कार्य है पर वह प्रयत्न जिसमें प्रभावना का अविभाज्य है इस प्रीत का भाग है।

मथुरा की केन्द्र मान सर जमी पर बसिण में कुम्हारना बागरा,
महापुर के बसिण मान बागसर, बरोही, ग्याधिर के बसिणी मान तथा कमुर के
पूरी मानों में जोड़ी जाती है। उर में यह कुम्हार के पूरी मान में जोड़ी जाती है।
उर पूरे कुम्हार में यह कुम्हार, बरोही, बटा, मथुरा तथा गंगा पार ब्यापू, बरोही

१- डा० बीरन्ध मर्वा - साधुनिक प्रकाशना - सिन्धुतानी कोठी जलानगर १२५४ ५

१- डा० त्रिवेणी- सिमियाष्टिक एवं वाक्-वर्णिता- भाग ६ सङ्ख १ पृ० ७० पृ० ३६६

१- डा० बीरेन्द्र कर्मा 'वायुनिक कर्माणा' दि० २० प्रमाण १९४३ पृ० ३३, ३४

तथा नीलास की तराई में भीली जाती है।

डा० वीरेन्द्र कर्मा ने कहा कुल रीति फस २० हजार की भील
तथा भीली वाली की संख्या ७६ लाख है ^{माला} के लम्बा है।

डा० वीरेन्द्र कर्मा ने कहा कि का रीति बतलाते हुए लिता है :-

बाधुनिक कृषि का रीति बतलाते हैं हिन्दी की दो बन्ध परिवर्तनी भीलियाँ
बनाने लगी भीली तथा बुन्देली है बिरा हुआ है। इसके पूर्व में हिन्दी की पूर्वी भीली
कभी का रीति है और परिवर्तन में रायस्थानी की दो पूर्वी भीलियाँ बनाती और
बन्धुनी भीली जाती है। बाधुनिक कृषि का एक करोड़ देश लाल जलवा द्वारा बन्धुनी
हजार कभील रीति में भीली जाती है।

कृषि का रीति का प्रभाव-

कृषि रीति का रीति बतलाती है। ऐतिहासिक काल के समय है
मधुरा का ऐतिहासिक महत्व रहा है। मुल्तान काल में मधुरा रीति लाली रायस्थानी
दिल्ली और बागरे का बन्धु बन्धु थी। धार्मिक कारणों से मधुरा और भारत में
बन्धुवर्ष की रायस्थानी थी। मधुरा काल और मुल्तान के बन्धुवर्ष का रीति
मुनि में लौटने के लिए लिखे गये जाते थे। कहाँ कहाँ बन्धुवर्ष की फस कहाँ कहाँ कृषि
का रीति और उसकी भाषा मधुरा के जीवन की बल बतलाता है नही और बाध
की बन्धुवर्ष के लालों पर बाध है कालीर या फल में रीति या मधुरा परिवर्तन का काल
में फल हुए रीति का भाषा मधुरा का बन्धुवर्ष है रीति बतलाते हुए है और
कभील बन्धुवर्ष-परिवर्तन-कृषि

१-

२- डा० वीरेन्द्र कर्मा - बाधुनिक कृषि का रीति - हि० २० प्रमाण १९५४ पृ० ११

विन्ही सीता पवित्र प्रभुमि थी। साधारण की प्राण विन्दु जाता उन्हें पाये सारथी के रूप में पुगती है, किन्तु दृष्ट्य रूप में ही बधिरास विन्दु जाता मन्वान का बाराका करती है। कवि का बधिप्राय यह है कि वेष्मण की के उत्पान और प्रचार के साथ साथ प्रेम का प्रभाव और विस्तार बढ़ता जाता। सुदृष्टी कील और दुष्टास के वेष्मण कविों के लिए प्रेम की भाषा केवल साहित्यिक भाषा ही नहीं थी किन्तु पवित्र भाषा भी थी, क्योंकि उही भाषा में वेष्मण महात्माओं ने भी चित्तवर्षित थी, ज्ञास की नन्ददास थी, सुतास की बाधि ने मन्वान दृष्ट्य की सीताओं का वर्णन किया था। यह वर्णन न केवल सत्य और सत्य भाषा ही में न था। किन्तु उस काल के प्रिय सीता में भी था। उनके वर्णन कभी पों पर उठकर प्रकाशना सारी सार भास में केवल नही। यह वेष्मण कविों के लिए बाधित ही नही। कवि नीविन्द सत्य काली कवि वेष्मण कवि है और सुदृष्ट के पक्ष वेष्मण नही मन्वान का कविताओं में प्रेम की प्रभावशी का प्रभाव सत्य करता है।

उस प्रकार प्रभावना का केवल सत्य नही है। यह सीता नीदृष्ट्य के प्रभाव के नाम से सीता प्रेम कालास रहा। बधिरासकों के सुदृष्ट नमुरा मारी उस प्रेम की साधनी थी। किता सों ने कवि प्रभावना काकरण साधकसुत विन्द। में स्वाधिर के बधिरास चम्पार की प्रेमप्रस में ही भाषा है।

साथ ही सीता की दृष्टि है सीता प्रभावना के साहित्यिक जलिया का सत्य है ही, परन्तु काव्य भाषा के रूप में कला जलिया बहुत फले है सीता बाधा है। काव्य भाषा के रूप में कला प्रचार सत्य सारी भास में रहा। प्रभावना

१- प्रभावना की जलिया 'समीक्ष कविता' विन्ही साहित्य समीक्षा २००२-२

२- नन्द सास ठे पुत' की ज्योत्सकीसठ ठिकनरी बाध' सन्धे सन्ध मेडिसठ जलिया
उत्तर १९९२ में उपसुत पृ० ३१

३- सी विवाहदीन २० ग्रामर बाध प्रभावना का प्रभुमि पुस्त २०

४- रामचन्द्र सुत- सुदृष्ट की प्रभुमि' पुस्त ४ तथा सुदृष्ट सीता- प्रभावशी

१२००-१२५० ई० तक के सुदीर्घ काल में अधिकांश भाग में सारे उत्तरी भारत, मध्य भारत, राजस्थान तथा कुछ चीन तक फैला की भी उल्लेख साहित्यिक भाषा मनी रही। इस प्रकार जब मण्डस के चारों ओर व्याप्त नया युगा के दक्षिणी परिष्करी प्रेरक में नीची जाने वाली भाषा का भी नीची हो गई। यद्यपि त्याग के कारण वह अन्य भाषाओं से प्रभावित अवश्य हुई है।

डा० बीरेन्द्र वर्मा के अनुसार गुजरात भरतपुर, कराँची तथा म्यासिमर के परिष्करी भाग में जहाँ राजस्थानी तथा कुन्बीली की कुछ कुछ कलक जाने लगी है। गुजरातर, म्यासिमर तथा मनीषाल की तराई में लड़ी नीची का प्रभाव शुरू हो गया है तथा छटा, मेसुरी और नीली में कुछ कन्नीची का जाने लगा है। वास्तव में पीलीनीच तथा छटा की नीली भी कन्नीची की अपेक्षा क्रमाभा के अधिक निकट है।

वस्तुतः क्रमाभा ने अपनी व्यापकता की युधि के लिए उन निष्ठताओं तथा भाषाओं से नीचियों की उन सभी प्रमुख विशेषताओं को ग्रहण कर लिया है जो इसे अधिक उच्चतम तथा काव्य भाषाभिन्न गुण प्राप्त करने में विशेष अत्यन्त जिद हुई है। इसके परिणाम स्वरूप ही विद्वत् रूप हटकर साहित्यिक रूप बन गया।

क्रमाभा के साहित्य के कवियों ने प्रकृत जाने का महत्त्व प्रयत्न किया जिसके परिणाम स्वरूप हुए तथा जाने के अन्य कवियों की भाषा में बहुत अन्तर हो गया। फिर भी साहित्यिक क्रमाभा का प्रतापार अवग्रह की सामान्य नीची हो मनी रही और विभाषाओं और भाषाओं की विशेषताओं का अपाचार जहाँ जहाँ अवश्य गति है किया गया कि आधारभूत पाठक प्रेम और अन्तिम विकास कालों के भाषा रूपों में अटपटा पन नहीं अनुभव करता।

१- डा० सुनील कुमार वर्मा - भारतीय काव्य भाषा और शिल्पी पृ० १२६

२- विश्व मास्ती संस्करण प्रकाशक १९११ पृ० ७

कवनामा में कवप्रौढीय कवियों के वसिष्ठित दूरस्थ प्राचीन कवियों ने भी रचाये की। उनके लिए भित्तीवाच की छिन्ना फल कि कवनामा में कविता करने के लिए कवनामी होना आवश्यक नहीं।

* कवनामा हेतु कवनामी की न कुनामी

हेतु हेतु कविता की भाषा ही है वाचि । * १

वसिष्ठाय यह है कि कवनामा का प्रकार उस समय पूर्ण विचार से पश्चिम में कवनापुर तथा और उधर में कवनाम गढ़नाच है, पश्चिम में कवनाम तक ही गया था। कवनामी दुन्दुभी वाचि की विभिन्न भाषाओं का नाम की भीछाई नहीं। फिर भी बहुत बड़े कवनाम है वाचर जाने का हीम वसिष्ठित कवियों की कवनामा में भी रचा करने की प्रवृत्त करता रहा ।

कवनामा का भाषा के वर्ग में प्रयोग

हिन्दी साहित्य में कवनामा मयुरा के निम्नवर्ती प्रयोग कवनामा मयुरा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। यह बड़े वाचर की भाषा है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रथम विकास कालों में कवों की भाषा की कवनामा छद्म नहीं की गयी परन्तु कवनामा व निम्नवर्ती है कि वसिष्ठित है कवनामा की निम्नता वसिष्ठित करने के लिए कविता त कवनामा का प्रयोग कवनामा होना रहा होना। कवनामा पर ही कवनामा वसिष्ठित है यह है 'कवनामा' क्योंकि प्राचीनकाल में कवनामा की भाषा कवनामा व पुनरुत्पत्ति है। हिन्दी के प्राचीन कवियों द्वारा प्रयुक्त कवनामा कवनामा का वाचर में प्रयुक्त भीषी वा विनामा के लिए प्रयुक्त था। ही वाचरिष्ठिक भाषा की निम्नताओं की वसिष्ठित हुई थी। कवनामा वसिष्ठित

१- भित्तीवाच - कवनामा मयुरा ५० ६

कलाञ्जलि से लेकर बाप तक का साधारण में बिना समय और बिना स्थान में भी भाषा प्रचलित रही इसके लिए भाषा सभ्य का प्रयोग किया जाता रहा। भाषा सभ्य वास्तव में जनजातीय भीखी बाने वाली भाषा के अर्थ में बराबर प्रयुक्त हुआ है। अतः भाषा सभ्य संस्कृत से भिन्न दूसरी भाषाओं के लिए प्रयुक्त होता रहा और बाप में बहकर कभीर, सुखी और केवल बापि का भाषा सभ्य से अभिप्राय केवल संस्कृत से ही उसका अन्तर करना उद्देश्य रहा होगा। प्राकृत और अपभ्रंश से नहीं।

गोस्वामी सुखीपाद ने कहा है " का भाषा का संस्कृत बाप बापि बापि " से उनका अभिप्राय का साधारण में प्रचलित भाषा से है।

केतकाव ने भाषा सभ्य का प्रयोग किया है :-

उपलब्धी तेषि कृत मन्वमसि कृत कवि केतकाव

रामकन्द की चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश । २

सभा

भाषा नीलज बाने बिनके कृत से बाप ।

भाषा कवि नो मन्वमसि तेषि कृत केतकाव ।। ३

बापि प्रयोग संस्कृत से पुनः अन्य भाषा के लिए प्रयुक्त हैं।

कहते समय तक यह धारणा मनी रही कि का भाषा सभ्य का उद्देश्य कदा कभी की कठारखी कलाञ्जलि के पक्षि नहीं हुआ क्या कि बीरेन्द्र कर्मा ने किया है :-

निश्चित रूप से का भाषा का उद्देश्य कठारखी कलाञ्जलि से पुनः

१- सुखीपाद - दीक्षावली दीक्षा संख्या ५७२

२- केतकाव - रामचन्द्रिका प्रकाश प्रकाश दीक्षा ५

३- केतकाव - कविप्रिया पृ० २१ अन्व ७

का नहीं मिलता। परन्तु जका निगम ठीक नहीं। क्योंकि क्यमाणा हज्ज का प्रयोग क्यमाणा की भाषा के रूप में नहीं की जातीय की परन्तु काक्य भाषा के रूप में फिह भाषा नाम से कक्य प्रयोग प्राचीन ज्ञात है होता चला आया है।

क्य प्रयोग की साहित्यिक भाषा के तर्प में क्य भाषा हज्ज का प्रयोग एवं क्य भिन्नारी वाच के काक्य निगम में प्राप्त होता है।-

* भाषा क्यभाषा रुधिर की कृति क्य कीर ।

मिह संस्कृत पारशी ५ वति प्रकट हु कीर । * २

क्या

* क्य भाषा मिह क्य नाम कनि भाषानि ।

क्य पारशी मिह प्रकट विधि कनि क्यानि ।। * ३

भिन्नारीवाच के प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निष्कर्ष है कि क्यभाषा उनके समय में अपने हुए रूप में प्रयुक्त नहीं होती थी। तर्प कीर भाषाओं के शब्दों का मिह या मिहें उनके आत्मभाव कर ज्ञात था। भिन्नारीवाच ने क्य प्रयोग की नीती के लिए क्यभाषा का प्रयोग किया। और यह नाम पूर्ण रूप से प्रयुक्त हो गया और वही अधिक उपयुक्त बना दिया गया। भिन्नारीवाच ने जाने पत कर तो यह हज्ज का प्रयोग मिली जा।

संस्कृत में भी राक्षसी में यह हज्ज का प्रयोग किया है। नीती ज्ञात नीरिया के अनुसार 'क्यभाषा' हज्ज का प्रयोग भिन्नारीवाच के पद्धति का भी

१- डा० पीरुन्ड कर्मा क्यभाषा पृ० १०

२- भिन्नारीवाच काक्य निगम पृ० ६ अध्याय ७ हज्ज १४

३-

"

"

" १५

मिलता है। हमोंने गोपाल कृत एवं विद्याल सं० १६६१ से विम्बसिद्धि उद्धरण किया है :-

‘ नर नाभा निर्मित ली करि कृपाभाषा नीव ।

कन मुपास याते तर्ह वस्तु लीकन नीव ॥ ’ २

जैसे अतिरिक्त उदाहरण ‘ रसिक प्रिया की टीका सं० १७५५ में भी कृपाभाषा शब्द का प्रयोग ही नहीं मिलता बल्कि इसे पुराभाषा से भी अधिक महत्व प्रदान किया है। क्योंकि इसकी कृतप्रमाण कृष्ण ने बहुत कुछ का प्रमाण बताया है।

‘ पुराभाषा से अधिक है कृपाभाषा शीघ्र ।

कृतप्रमाण वाली वस्तु कृतप्रमाण करिह ॥ ’ ३

बापि प्रयोगों के आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि कृपाभाषा शब्द का प्रयोग अवश्यी उदाहरणों के प्रमाणी होने लायक था।

साहित्यिक कृपाभाषा-

सामान्य रूप से कान्हीय भाषा की साहित्यिक भाषा का स्थान कृष्ण करने में ही तीन स्तराधिकारों का ही जाती है और ये स्तर की रचनाओं में पूर्व और विरहित दोनों स्तरों के रक्त होते हैं और वह भीरे भीरे कभी प्रगुति के अनुसार कान्हीय रूप में समाप्त हो जाती है।

सब प्रथम चन्द्रर स्त्री गुलेरी ने अफ़्ग़ान में हिन्दी के प्राचीन रूप की हूँकी का प्रकाश किया है और वह एक अफ़्ग़ान साहित्य पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं था

१- मोती लाल मीरिया - रायस्थान का फिदा साहित्य पृ० १०

२- कनक केन मुन्हाल्लन बीकानेर की हस्तलिखित प्रगति से १७४६ पृ० ४५

३- मोती लाल मीरिया - रायस्थान का फिदा साहित्य पृ० १० पर उद्धृत

जाता तब तक हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और उसके क्रमाभा वादि स्वी के विकास के सम्बन्ध में निश्चित रूप से प्रस्तुत नहीं की जा सकती।

डा० बीरेन्द्र कर्मा का मत है कि जब पुरानी हिन्दी १२- १४ वीं सताब्दी में अफ़ग़ान की भाषा फार्सी से और उसके वसतिस्थ बाहुमिश्रा का भी बोझ बहुत कुछ इस भाषा में मिला है वह राजस्थानी गुजराती भाषाओं के प्राचीन रूपों की ओर उल्टा करता है। क्रमाभा जैसा वास्तविक हिन्दी का प्राचीन रूप ही बहुत ही कम मिलता है। प्राचीन रूपों पर १८९४ में डॉनप्रतापराय कृत कुमारपाठ प्रतिनीप और पर १९०४ के में का बापाय मेहराण कृत क्रम्य चिन्तामणि नामक रूपों के आधार पर क्रमाभा के कुछ कुछ रूपों का आधार मिल जाता है और ज ११ वीं १० वीं सताब्दी में हुए कविता के उन रूपों की प्रुति बीरे बीरे जल न।

भाषा की दृष्टि से अष्टादश के कवियों से पहिले क्रमाभा में रचना करने किली भी कवि का परिकल्प उचित नही होता। नामीय भी क्रमाभा परिवर्तित रूप में बनारे सामने जाती है। अतः अष्टादश का प्रका कर्मा ही क्रमाभा का वादि कवि कर्मा है और उसी भी जल वधिक रूप धूर की है।

१४ वीं र्व १५ वीं सती में केकुमार, वल्लभ वादि नाम जाती है किन्तु उनकी कौन प्रामाणिक रना उपलब्ध नहीं होती। अतः पर केकी की १५ वीं सताब्दी से केर केकी की कठारकी सताब्दी तक का काल प्रुत रूप है क्रमाभा वाचित्य का काल है। अतः इस काल का हिन्दी वाचित्य का उचित रूप

१- कम्पनर कर्मा दुधरी - पुरानी हिन्दी - भा० प्र० प० भाग २

२- डा० बीरेन्द्र कर्मा - क्रमाभा काकरण प्र० २६

३- डा० केशवर कर्मा - प्रस्ताव प्रका संकरण प्र० ५३६

४- डा० कादीश नृप गुजराती और क्रमाभा कृष्ण काव्य का तुलात्मक अध्ययन प्र० २

प्रकार से कृष्णायन साहित्य का अभाव है। दूसरा सब अन्य व्यक्तियों के कविता की रचना कृष्णायन साहित्य की अपूर्ण निधि है।

वाचस्पति रामचन्द्र शुक्ल ने दूर की भाषा की किसी पत्नी हुए परम्परा का विवरण स्व कहा है, परम्परा का पुत्र नहीं। दूर के परमात्मा नवाकपि सुखीयाप की जाती हैं। यद्यपि कन्दर्प रामचन्द्र नायक की रचना कभी भाषा में की है परन्तु उनकी अन्य केवल रचनाएँ कवितापत्नी गीतापत्नी तथा अन्य पत्रिका वापि कृष्णायन में ही हैं। ऐतिहासिक के कविता में विहारी, मति राम, ज्ञानन्द, रत्नान, केव, ज्ञानपति तथा पद्माकर वापि के कृष्णायन काव्य की सम्पूर्ण समुद्र भिन्न है। कृष्णायन साहित्य प्रकृत रूप से भविष्य तथा दूर की रचनाओं का संग्रह है। अपूर्ण है अन्य ही वापि वाङ्मयिक भारतीय कार्य भाषाओं में कृष्णायन का साहित्य परिवर्तन कीर काव्यत्व की दृष्टि से अधिक समुद्र है।

अ. २६ की उदाहरणों की कुछकर रचनाओं में कृष्णायन साहित्य का वाचस्पति की निम्न है परन्तु पत्नी की कीर्ण रचना नहीं मिलती किन्तु केवल कृष्णायन की ही कृष्णायन की।

महान् सम्प्रदाय के बीच में कृष्णायन सब साहित्य कलापर पाते हैं। वाचिक कला है निम्न कर कभी भाषा के कारण कृष्णायन के वाचिक की निम्न कलावाचना से ठीक तथा कलावाचनाओं सब सुखान् भाषाओं तक कभी प्रभाव का विस्तार किया।

प्राचीन एवं वीर कवि-

हिन्दी साहित्य का वाचिक विद भाषा में हुआ वह कृष्णायन

१- वाचस्पति रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का सुजात्यक वाचिक पु. १६५

का ही एक परिष्कृत रूप था। इस भाषा का प्रथम रूप हिंदी के चारों ओर ही बोलता जाती थी। इसके वास्तविक परापूर्व नाम प्रचीन साधुग्राम में होती हुई तथा वहीं इस की परिष्कृति करती हुई यह मुखराल एक विस्तार की प्राप्ति थी। इनारे काव्य साहित्य का प्रारम्भ की जाती है। वे दुर्गा, विजय नाम प्रचीन साधुग्राम था। जो कविता का है विजयी हुई भाषा में होती थी वह फिर कलसाती थी। अतः प्राचीन कथाभाषा के लिए फिरोज राज्य प्रयुक्त होती था। टैलीटरी ने प्राकृत फिरोज की भाषा की फिरोज वर्णित करा है।

डा० श्रीमती कुमार कर्मा ने प्राचीन इस भाषा या फिरोज की क्या कहती हैं वह है कि साधुग्राम पाकर यह उतर भारत के एक बड़े प्रभाग की भाषा ही नहीं थी। उन्होंने ही जोहरी वर्णित का कनिष्ठ रूप कहा है। विजय नाम साधुग्राम में एक ऊँची की चारों ओर ही बोलता है। वहाँ ही कलसाती या फिरोज के नाम से पुकारती है। डा० ग्रिफ़िन ने एक बात भी यह वास्तविक भाषा का फिर करती हुए कहा है कि स्थान विशेष से वर्णों की स्थायी एक अधिक लोक प्रिय की गई और उनकी एक विशेष परम्परा सुनिश्चित हो गई तथा एक विशेष वर्णों के रूप में यह वर्णों ने उतर भारत के एक बड़े प्रभाग पर अधिकार बना लिया। जो वर्णित ही नहीं है जोहरी वर्णित कहा है। यदि यह फिरोज राज्य की व्युत्पत्ति पर विचार करें तो कहा जाता है कि फिरोज एक विशेष रूप का नाम था और यह नाम फिरोज राज्य के वापस के कारण रहा था और वास्तविक फिरोज राज्य का अन्तर्गत वर्णित के लिए किया जाता रहा है और वास्तविक में यह राज्य कथाभाषा के लिए ही प्रयुक्त होने लगा।

१- टैलीटरी - मण्डल एन्टीक्वैरी १८९४ पृ० १४

२- डा० श्रीमती कुमार कर्मा - वास्तविक एन्ड डेवेलपमेंट वाफ भाषा की वर्णित पृ० ६४

३- डा० ग्रिफ़िन - विनिश्चित ही वाफ वर्णित नाम १ विरोज १ पृ० २४

जब की विभिन्न नीतियाँ-

समीपकी घुनागों में विभिन्न नीतियों का सम्मिलन होने के कारण जब की कई स्थानीय नीतियाँ ही जाती हैं। मुख्यतः ज्वालामुखी और मेरीनास की तराफ के परिष्कृत जल की नीती का प्रभाव स्पष्टतः परिचित होना है। मेरीनास की तराफ में नीती जाने वाली वह नीती 'मुस्ता' कहलाती है। नीती पीछीपीछ, हटा, मेनपुरी बादि की ओर यह पर कम्पाणी की छाप पड़ने जाती है वह नीती कम्पनी कहलाती है। मुस्ता मेरतपुर बादि के बाध-बाध का रायस्थानी नीतियों का प्रभाव पड़ने जाता है। मेरतपुर के बाध बाध कहाँ प्रोक्त का नाम 'ठान' होने के कारण यहाँ की नीती की 'ठानी' कहते हैं। करीबी तथा बम्बल पार की जब पर मुस्ता की स्थानीय नीती भारी या भारी का प्रभाव पड़ने जाता है इसे बाधाबारी कहते हैं।

यह प्रकार स्थान के कारण विभिन्न स्थानों में ज्वालामुखी में भीड़ा बहुत अन्तर का जाता है। मुरात बडीमढ़ ज्वालामुखी बागरे की ज्वालामुखी बाध है। बडीमढ़ के पास मुख्यतः में ज्वालामुखी में लड़ी नीती का वास्तविक सम्मिलन ही जाता है यहाँ का ज्वालामुखी आकार का सम्मिलन है मुख्य अन्तर यह है कि कुछ ज्वालामुखी में नीती नीचा जाता है और यहाँ नीती का प्रभाव होता है।

बागरे के पूर्व बडीमुर तथा करीबी के स्थानीय जल एवं ज्वालामुखी के पहाड़ में प्रायः बाधों 'ज्वालामुखी' ही प्रमुख होती है जो अन्तर पर केत पड़ता है वह यह है कि यहाँ के अतीत काल के ज्वालामुखी धर्मों है 'य' का तीप ही जाता है और 'बम्बल' के स्थान पर का 'पती' प्रमुख होने जाता है।

१- चिन्वी भाषा और वास्तविक लिपि का विकास - बाध नीतिव्य विन

२- डा० उदय नारायण विनारी - चिन्वी भाषा का अन्तः और विकास

दुबान के बिलों हटा, मयपुरी एवं मुलपुल्लर में यो "य" का लीप
 हो जाता है तथा "बी" "वी" में परिवर्तन हो जाता है। यही प्रक्रिया नीचा
 चार के अक्षरों तथा बिलों बिलों की क्रमांकन में भी मिलती है। अर क्रमांकन अक्षरों
 में मिल जाती है। यहाँ निश्चित रूप से "बी" का ही प्रयोग होता है। पुनः अक्षर
 के उत्तर पश्चिम में यो "बी" "वी" में परिवर्तन हो जाता है। परन्तु यहाँ "य"
 की स्थिति नहीं हुई है। डा० तिवारी के मतानुसार अक्षर में नेपास की तरह में क्रमांकन
 एक निश्चित क्रमांक का रूप धारण कर लेती है और यहाँ जो "मुक्ता" का प्रयोग^१
 क्योंकि यही नीची पाठ मुक्ता लीप है। डा० तिवारी ने मुक्ता की क्रमांकन के अक्षरों
 हटा है किन्तु उनके विचार से जो छोटी बिलों का क्रमांकन भी हटा जाता है।^१
 मयपुर के बाध-भास यही कर्ष प्रक्रिया हो जाती है। यहाँ डा० " " और " " वास्तव
 " प्राचीन" तथा ठान मान ।

डा० तिवारी ने क्रमांकन का निम्नलिखित विभाजन किया है।
 उनके विभाजन के आधार की कक्षा की अक्षरों के मुख्यस्थान रूप "यी" "वी" "यी"
 अक्षर "वी" है।

१- बाधें क्रम । यही ।

मयुरा, अक्षर, तथा पश्चिमी बाधरा ।

२- बाधें क्रम । यही ।

मुलपुल्लर ।

३- बाधें क्रम । यही ।

१- डा० उदय नारायण तिवारी

२- डा० तिवारी - लिखित एवं बाध शब्दों का नाम १ उदय ।

४- कर्माधी में उन्मिष्टि क्व - । बली ।

छा, कनपुरी, क्वार्थ वीर जीही ।

५- क्वारी में क्वार्थक क्व - । बली ।

मिठाही । क्वार्थक के उतर पश्चिम की जीही ।

६- राजस्थानी 'कनपुरी' में क्वार्थक क्व - । बली । या - । बली ।

मरपुर

राम की जीही

७- राजस्थानी । क्वारी । से मिठी क्व - । बली ।

गुठारि

८- क्वीरान की उतर की मिष्टि क्वार्थक -

क्वीरान क्वीरान के बिने के पुरान में क्वीरान क्वीरान क्वीरान के स्थान पर प्रुक्त क्व 'क्व' तथा 'गु' मिलता है। जी प्रकार 'क्वीरान' जीही में क्व क्व 'ह' मिलता है बिने 'क्व' तथा 'गु' की प्रुत्पत्ति क्वार्थक है।

क्व क्वार्थ में पुरान के बिने में 'र' के बाद के क्वार्थ का बिने 1W की बाधा है। यह क्वीरान क्व में क्वीरान की फ़ीही क्वार्थक क्वीरान के बाधा है।

यथा क्वीरान, क्वीरान कनपुरी । क्वीरान, क्वीरान, क्वीरान, क्वीरान, क्वीरान क्वीरान, क्वीरान क्वीरान । जी प्रकार क्वीरान क्वीरान क्वीरान क्वीरान क्वीरान क्वीरान ।

क्वीरान क्वीरान की बाधा क्वीरान में 'क्वीरान', 'क्वीरान', क्वीरान क्वीरान

९- डा० क्वीरान क्वीरान क्वीरान - क्वीरान क्वीरान क्वीरान क्वीरान क्वीरान

स्वर्ग के बाद का । वा । की 'म' में परिणत हो जाता है। यह प्रकार 'की' 'की' भिन्नता, भिन्नता । पर पिता, भिन्नता। कभी कभी कथाप्राण जगि वरुण प्राण में परिणत हो जाती है। यथा राय रात । जिया स्व । है नहीं है नहीं ।

कथाप्राण तथा सुखचक्र की कथाप्राण में फड़स की 'कड़ी नीली' का प्रभाव पड़ने जाता है।

'कथाप्राण के कारण काल का उन प्रत्यक्ष वातावरण तथा वायु में वाणि में परिणत हो जाता है। नीला । नीली है । नीलनि, प्रकाश । प्रकाश वादि वसिष्ठा भक्तपुर कराती तथा पूर्वी कथपुर की पूर्ण वासिष्ठा की कथाप्राण वाणी है। उनकी नीलियों में लोक स्थानीय विशेषतायें हैं जो रावस्थानी के वाणिष्ठा के कारण रावस्थानी वीर का के नील भी कड़ी हो गई हैं।

यह प्रकार है कथाप्राण के उद्भव वीर विचार की संश्लेषण का स्वर प्रस्तुत की गई है।

विशेष बखान

बड़ी पीढ़ी की विहंगम एवं विमल

सही मौखी की निरुक्ति एवं विकास

हिन्दी का नाम भी साहित्यिक रूप उपलब्ध है, वह सही मौखी हिन्दी का परिभाषित रूप है। सामान्य रूप से दिल्ली बोलचाल। बुरुनीम। की कथाधारण की मौखिकता की मौखी की ही सही मौखी नाम से अभिहित किया गया। सिद्धी भी मौखी व भाषा का नामकरण करने के दो प्रकार हैं। स्थानपरक एवं गुण-परक। परन्तु यदि हम सही मौखी के नाम पर विचार करें तो वह सिद्धी प्रान्त या देश का नाम नहीं है। वतः दिल्ली-बोलचाल की मौखी के विभिन्न प्रान्त यह विशेषण स्थान परक नहीं हो सकता। किन्तु संस्कृत अपभ्रंश भाषा की भाँति सही मौखी गुण-परक विशेषण हो सकता है। चन्द्रमौली पाण्डे ने इसी निरुक्ति के रूप में लिखा है :-

“ सही मौखी उपर्युक्त एक विशिष्ट नाम है। सिद्धी भाषा का नाम सही मौखी ही ही नहीं कहा। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ऐल्ता तथा अन्य भाषा नामों की निरुक्ति पर ध्यान देने से यद्यपि इन नाम की विशिष्टता बहुत दूर ही जाती है, तथापि इसी तरह बराबर ही वे नहीं रहती हैं और बार बार यही प्रश्न उठता है कि वास्तविक इसी निरुक्ति क्या है। यहाँ सही नाम सही मौखी पड़ गया। यन्त्रणतः कभी संस्कृत, प्राकृत, अन्य ऐल्ता भाषा की भाँति इसका भी नाम वह निश्चय और और और काह इन के प्रभाव से ऐसा वर्ष हुए है हुए हो गया। ”

इस बात की जाँचना-

चन्द्रमौली पाण्डे का यह कथन कि सही मौखी एक विशिष्ट नाम

नाम है और यह नाम अमर, उर्दू रत्ना की भाँति यह निराला और फल कम के प्रभाव है जहाँ कहीं हूँ का हूँ होना ठीक ही मान पड़ता है, क्योंकि उड़ी गीती का नाम संस्कृत, अमर रत्ना का भाँति गुणपरक है जो उल्लेख है, सराफा का भी गुण का भीतर है। निराला के प्रत्यय की उल्लेख के लिए निराला ने उड़ी गीती की अनेक प्रकार की व्याख्या की- सर्वप्रथम बन्धुवर्मा का गुहरी ने कहा :- " हिन्दुओं की रीति हुई पुरानी कविता की मिलती है वह कम माना या पूर्ण, बजाड़ी, कभी, रायभानी और गुवराती का भी है मिलती है क्योंकि उड़ी गीती में पाई जाती है। उड़ी गीती या फकी गीती या रत्ना या वर्तमान हिन्दी के तब कम की वक्ता यह मान पड़ता है कि उर्दू रत्ना में है फारसी, बली, अरबी या तुर्की की निराला कर उल्लेख या हिन्दी अरबी और अरबी होने से हिन्दी बनायी गयी" वागे कहा है :-

" किसी मुसलमानों ने बागरे, दिल्ली, अलाहाबाद, मेरठ की फकी गीती की उड़ी कर बनाकर अरबी और अरबी के लिए अरबीनी बनाया। अतः बन्धुवर्मा का गुहरी के अनुसार उड़ी गीती उर्दू से बनाई गई है क्योंकि हिन्दी मुसलमानों बनाया है। गुहरी की ने उड़ी गीती रत्ना या फकी की एक ही माना है क्योंकि अरबी रत्ना के अनेक गिर पड़े अनेक पर उड़ी की बाहु कर दिया । ४

मोहाना एक साधन ने उड़ी गीती की व्याख्या इस प्रकार की है :- " उड़ी गीती के नाम हिन्दुस्तान में बागदोर पर गिरा गीती है है कि हिन्दुस्तान का जन्मा जन्मा जानता है वह न कहीं साध ज्ञान है और न ज्ञान की कहीं साध । "

अन्तर्नि अन्तर्नि लिखा है :- उन समकालीन हैं कि कौंसी गीती

१- बन्धुवर्मा का गुहरी - पुरानी हिन्दी

२- उर्दू वैभाषिक पत्रिका जुलाई १९१३ पृष्ठ ३६०

वाने वाली कृष्ण पाठ नहीं दे सकती । सही नीती में कल्याण में किसी कितने
 का समय नहीं मिलता । मैं यही माने रही हूँ कि सही नीती नीती की कृष्ण की
 तरकीब की वीर की एक कानी वाने में हाथ दिया उस वक्त हिन्दी में कृष्ण कृष्णाणा
 में कृष्ण सिद्धि जाती थी वीर उन्हें जो भिन्न वीर वीर था वह सही नीती में नहीं
 था वीर कल्याण नाम सही नीती कल्याण का गया था कि वह नीती कल्याण की वीर
 कानी की उत्तरी नीती नहीं मान्य होती थी । प्रसिद्ध नाम का कल्याण डा० वीरक
 का है वह नाम की कृष्णाणा कल्याण नामा है ।

अपराध की अपेक्षा वास्तव में यह भीती सही जाती है, क्योंकि
 इसी कारण इसका नाम सही भीती पड़ गया। डा० बीरेन्द्र वर्मा की व्याख्या सही
 सही और ज़रूरत है इसका कारण है कि हमने सही भीती की कसौटी पर अपराध
 की गहिराई की प्रकृति जान की है। बिन्हाट हीन ने सही भीती पर भी प्रतिक्रिया
 में इस भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि यह बहुत वैयक्तिकी द्वारा भी उपेक्षा की
 जाँकि है जो व्यापक गहराई की भीती मानते हैं।

इस विधानों विधिपर ऊर्ध्व के ऊपरी के अनुसार तत्काल ही न
ऊर्ध्व से बरती फारसी के लक्ष्यों को निवास कर एक नवीन लक्ष्य की रक्षा की जाए उनी
का नाम लक्ष्य नीली रखा गया था। लक्ष्य नीली एक परिष्कृत साहित्यिक लक्ष्य थी।
के लक्ष्य नीली की लक्ष्य काल के विकास के लक्ष्य या परिष्कृत विधा हुआ लक्ष्य है।
परन्तु लक्ष्य का ही नाम है क्योंकि एक लक्ष्य है जो लक्ष्य से ही निर्मित है और लक्ष्य

- १- उर्दू केनातिल पत्रिका कुलकर्णी वगैरे (१९१०) पृ० ४६१
- २- डा० बीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी भाषा का इतिहास - हिन्दुस्तानी लैंगी कल (१९१२) पृ० ४६
- ३- उर्दू शिक्षा का कुलकर्णी (१९१२) पृ० ४६० पर उपलब्ध
- ४- बन्धु बही पाण्डे - उर्दू की उत्पत्ति " ना० प्र० य० पाण्डे १८ पृ० १६२

मिठी सुली वस्तु की तुलना में इस समझी जाती है और दूसरी स्थिति यह है कि मिठी सुली वस्तु में है बाहरी तत्त्वों की हाटकर उसे पुनः इस किता बाप या एक नया रूप दे दिया गया।

यह है कि "सही नीली" की स्थान प्रदान करने की बात बली की इस भाषा के अर्थों में जो अर्थ हैं इसके द्वारा और इस प्रकार स्थिति सही नीली के सम्बन्ध में इस फैलाया तथा फलप्राप्ति की दृष्टि से नीचे कहा। प्रमाणों के अर्थों में सही नीली की नीली, तरी या सही कहा करते थे। यह बात की मानने वाले थे सुभाकर मिठी, बाहरी प्रमाण तथा बन्धन बना हुआ।

इस विचारधारा के नीचे - यह, दूसरी, राख्यानी, की पड़ी नीली और उसकी तुलना में इस वाक्यान्त प्रमाण नीली की सही करते थे। सभी बन्धन बना हुआ, बाहरी प्रमाण गुरु तथा बाह्यरूप "सुभाकर" के नाम उल्लेखनीय हैं।

अतएव यह है कि मिठी सुली। के अर्थ पर सही नीली करते थे जिसका विकास है कि नीली में है बाहरी तत्त्वों की निम्नलिखित के बाद हुआ। इन विचारों के अर्थों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि :-

१- प्रमाणों बाहरी नीली की पड़ी मान कर उनकी तुलना में ही सही नीली नाम दिया गया।

२- प्रमाणों वाली निम्नलिखित सर्व उल्लेख के अर्थों के कारण ही सही ही नीली। कहा गया।

३- वाक्यान्त नीली की पड़ी एवं इस वाक्यान्त नीली की सही

१- डा० चित्तिरंजन मिश्र - सही नीली का वाक्यान्त भा० प्र० स० काशी पृ० ६

२- " " " " " " पृ० ८

३- बन्धन नीली पाण्डे - सही नीली की निम्नलिखित - य० भाग १८ पृ० २८४ पर उल्लेख है।

कहती थी।

वास्तव में ऐसा नाथ जी का स्पष्ट है कि तड़ी नीली की तड़ी तड़ी व्याख्या का प्रारम्भ क्रमाणा स्व तड़ी नीली के संघर्ष से हुआ। मार्सेल्लु हरिश्चन्द्र ने भी लिखा था :-

“ जो हमें यह है कि नार महिम्न किया कि तड़ी नीली में कुछ कविता ज्वाला पर यह भी विधानुसार नहीं मनी। साथ यह निश्चय होता है कि क्रमाणा में ही कविता करना उभय होता है और उनी है कविता क्रमाणा में ही उभय होती है। उनके वसिष्ठिस्त मार्सेल्लु ने तड़ी नीली की कविता की मीठी कहा है और क्रमाणा की कविता की मीठी। उस पर लीनी ने मीठी और नीली को हटा दिया और तड़ी नीली की तड़ी तड़ी व्याख्या प्रारम्भ होकर रुक ही गयी।

कहा क्रमाणा के सामने कि नीली की तड़ी तड़ी होना पड़ा होता और उनी के सामने उनी की तरी तरी । तरी तरी हुमान के कारण उका नाम तरी सा जो “ तड़ी ” होगया।

~~संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित है अथवा यह कि नीली नीली है ॥~~

सही नीली हज्ज के विभिन्न रूप -

कामता प्रसाद गुरु ने लिखा है :- " मुन्बैलण्ड में एक भाषा की ठाढ़ नीली या तुर्की कहते हैं। इसी 'ठाढ़' का भी वस्तुतः सड़ा ही अर्थ होता है। पारसाही में सही नीली की ठाढ़ नीली कहते हैं वहाँ भी ठाढ़ का अर्थ 'सड़ा' ही होता है । " हिन्दी हज्ज सागर में सड़ा के अनेक अर्थ दिये हैं जिनमें हमारे काम के ये हैं :-

सड़ा ।२। - मिला पका। प्रथित। सज्जा की सड़ा चावल।

१० ऊँचा। उरा :- यही सड़ा का अर्थ। इस अर्थ पर विचार करने से पता चलता है कि सड़ा का अर्थ में ऊँचे के साथ ऊँचे का भी विधान है। इसी प्रकार 'सड़ा चावल' का मतलब है कि चावल अपने काँची रूप में रह गया, पका नहीं उबला भात न बना वतः सड़ा का प्रभु या ठेठ अर्थ प्रथित है गहन या कात्थनिक नहीं। ठेठ का अर्थ है जिसमें कुछ भीत जोल न हो 'साखि' तथा हृद। निर्मल। निर्विष्ट। निदान। यह कहा जा सकता है कि सही नीली का अर्थ है प्रभु ठेठ या हृद नीली। सड़ा हज्ज पुस्तिका है जोर सही खोजी की नीली के विविध रूप में प्रयुक्त हुआ है।

डा० टी० ग्राहमस्ली ने सही नीली के तरी रूप जोर उसके परिष्कृत या हृद अर्थ का विरोध किया उन्होंने कहा कि " डा० गिल्लण्ड ने साफ़ साफ़ 'सही' हज्ज का प्रयोग किया है न कि तरी का। उनका विचार है कि सही नीली दिल्ली गैर की विभाजा के लिए सदा रूप में प्रयुक्त एक ऐसा विविध है जो उसके सही अर्थ में हृद ही गया है। उनका यह अर्थ सुधिर जोर प्रथित है न कि गैर। "

डा० वेली ने यह स्वीकार किया है कि सही नीली हज्ज का प्रयोग

१- कामता प्रसाद गुरु - हिन्दी व्याकरण - भा० प्र० स० काही पृ० २५

२- ग्राहम वेली - ऊँच साहित्य का अविश्व - पृ० ४५

डॉ० गिल्लहार्ड की प्रेरणा से सत्सुखस की लाल तथा लाल मिम ने किया और
यहाँ से उसका वर्ष प्रकाश कर दिया गया।

उर्ध्व प्रथम टी० ग्राहमेसी ने गंगाक वर्ष के विरुद्ध बाधाएँ उठाई
उन्होंने कहा कि फा नवीं कि बाधा पर उर्ध्व वाली ने लड़ी नीली का वर्ष गंगाक
का दिया। क्योंकि सत्सुख की लाल से पूर्व न ती किसी मुख्यमान लाल की लड़ी नीली
हम्य का फा लाल है और न उनके किसी कोर में उसका प्रयोग गंगाक वर्ष में प्रयुक्त की
हुआ है।

गंगाक उस लाल में उसका वर्ष यहाँ की नीली अवश्य दिया गया है
न कि गंगारों की नीली। सत्सुखस की लाल लाल मिम एक ही गंगाक नीली। डाकिए।
का लाल लालता पूर्वक प्रयोग नहीं कर पड़ी है। गंगा की लाल प्रवृत्ति हम
अवश्य या यद्यपि उसका साहित्यिक प्रकाश नहीं पा। ग्राहमेसी ने गंगाक का लाल
करी हुई लड़ी नीली की लड़ा हम्य का खोली हम लताया है और लाल वर्ष लड़ी
हुआ लताया।

ग्राहमेसी की ने भी उनके मुख्य लाल की लड़ी नीली एक लड़ी
हुआ मुख्य लाल है लुपित ठहराया है और उन्होंने लड़ी का वर्ष प्रकाश, ठंड लता लाल
नीली किम लाल की लाल लताया वाली के लाल वर्ष का भी प्रतिपाद किया। उन्होंने
कहा कि लड़ा मान लाल की लता है परन्तु 'लड़ा' का यह वर्ष किसी कोर में प्राया
नहीं। उनके अनुसार 'लड़ी' का वर्ष प्रकाश या ठंड नीली है जिसमें लाल मिमल न लाल।

१- ग्राहमेसी - उर्ध्व साहित्य का प्रतिपाद पृ० ४५

२- टी० ग्राहमेसी - उर्ध्व साहित्य का प्रतिपाद पृ० ४५

३- डा० गिल्लहार्ड मिम - लड़ी नीली का वाच्योक्त पृ० ५ पर उद्धृत

४- ना० प्र० प० भाग १८ पृ० २८२ - लड़ी नीली की विरुद्ध।

सही नीची है तब ही नीची कण्ड का भी प्रयोग हुआ है परन्तु
नीची का अर्थ भी यही है जो कि सही का है।

*** लड़ी लड़ी हथ का प्रयोग ***

कर्मचारी (२००१) की नई नीति राज्य का प्राथमिक उत्तरदायित्व की
के तहत लागू में किया है :-

[illegible]

सही पीली हथ्थ का पुराना प्रयोग सदस्यमित्र ने नाजिकीयास्थान

में किया :-

‘कम समय में १९५० में नाथिकीपालवान की जिले बन्दावती की
किया लही है, वेव बाणी है कीरु कनक नही उस्ता, क्वालि लही नीती में किया ।’

कान गिरजाघट में भी दि कीरिछिह कमुछिह में लही नीती
रथ का प्रयोग किया, उनके द्वारा इस प्रयोग में :-

१- चन्द्रकाश की छात' प्रेम पागर' १९०५ पू० १

२- सद्वर्णन - नागिर्निर्वाणस्यैव पृ० २

“ ज्ञान क्रांतियों में से एक बड़ी नीली ज्योति हिन्दुस्तानी के
 सूर्य चिन्मयी हो की है। ”

मुझे बड़ा हँस है कि ज्ञानाभा के साथ “ बड़ी नीली ” का परिचय
 कर दिया गया था। हिन्दुस्तानी की यह विशिष्ट प्रकृति या रंगी । अन्तिम बार
 स्टाब्स। उस माया के विचारों के लिए बहुत ही लाभदायक छिद्र होती। - तथा

“ वास्तविक बड़ी नीली । बड़ीनीली। में हिन्दुस्तान के आकाश
 पर विशेष ध्यान दिया जाता है और बली फारसी का ज्ञान पूर्ण परिचय रखा
 है।

इसके अतिरिक्त जू. १८०४ के में निम्नलिखित है । ४ हिन्दी रोमन बाप
 शक्तिशाली बलिष्ठता। में ही बार “ बड़ी नीली ” का सत्य का प्रयोग किया है :-

“ सत्यता का दूसरा अनुवाद “ बड़ी नीली ” ज्योति वास्तविक की
 निमित्त । अर्थात् ठीक बाप शक्ति। में से हिन्दुस्तानी से ज्ञान में केवल ही बात में है
 कि बली और फारसी का प्रत्यक्ष सत्य छिद्र दिया जाता है। तथा-

“ ज्ञान बाप की जो एक बहुत ही शक्ति प्रकृति है सत्यता ही है
 ज्ञान विचारों के लिए हिन्दुस्तानी की शिखा के सत्यप्रति के निमित्त ज्ञानाभा की
 सुन्दरता एवं स्वच्छता के साथ बड़ी नीली में कीनी भारत की हिन्दु ज्ञान के बुरा अनुवाद
 के वास्तविक लाभ की दृष्टि से लिया है। ”

१- निम्न लिखित “ पि हिन्दी स्टीरी टैर ” पान २ पृ० २

२- “ पि बोलिन्टिस्टिकप्रतिष्ठ ” पृ० ५

३- वही

४- निम्नलिखित पि हिन्दी रोमन बाप शक्तिशाली बलिष्ठता - पृ० १६

५- वही

उपरोक्त नीति प्रयोगों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह 'सही नीती' साहित्य, निर्मल या हृद चीन के साथ साथ प्रवृत्ति वस्तु या वास्तविकता^{vr^} ही है परन्तु इसके अन्तर्गत या नीति चीन या गैर-गैर वर्ग की पुष्टि नहीं होती।

हीनी नीती के अर्थ में सही नीती का निम्न प्रयोग सल्लुमो वास है ५० वर्ग⁹⁰ सार्वजनिक गरीबी के अन्तर्गत है :-

" जितना निष्ठ कर हीनी नीती ।

जी हृद गरीबी ही ही नीती ॥ " १

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सही नीती का हीनी अर्थ वस्तु चीन के कारण वास्तविकता में ऊर्ध्व की वस्तुता, प्रवृत्ति वस्तुता रहा होगा। डा० सार्वजनिक ने यह बात का उल्लेख करते हुए लिखा है :-

" नीतिगत के अर्थ में सही नीती चीनित वास्तव ही ही, लेकिन यहाँ तक वास्तविक है वास्तविक है हिन्दी । फारसी निमित्त हिन्दुस्तानी। उदाहरण के लिए कभी भी नीति में ही । "

डा० सुनीति कुमार अन्तर्गत ने भी लिखा है :-

" वास्तव में वास्तविक वास्तविक वास्तविक ही परिनिष्ठित नीती का वास्तविक निमित्त ही वास्तविक के अर्थ में ही नीति वास्तव के लिए वास्तविक नीती ही गरीबी के ही सही नीती या परिनिष्ठित नीती वास्तव निमित्त, यद्यपि वास्तविक नीतिगत वास्तव वास्तविक नीतिगत ही नीती या गरीबी नीती ही वास्तव ही । "

१- डा० सार्वजनिक निमित्त - सही नीती का वास्तविक निमित्त पृ० ११ पर उद्धृत

२- डा० सार्वजनिक - हिन्दुस्तानी के वास्तविक में हृद गरीबी फारसी" हिन्दुस्तानी पृ० ११३

३- डा० सुनीति कुमार अन्तर्गत - हीनी अर्थ निमित्त निमित्त प्रवृत्ति पृ० १५

डा० सुनीलकुमार ने भी दिल्ली की मुठ जीती माना है।

मुठमानी कास है ही एक जीतवाले की प्रवृत्ति जीती की यथापि भी साहित्यिक वास्तव प्राप्त नहीं था। लोक व्यवहार की भाषा के रूप में इसका प्रचलन बहुत व्यापक हो गया।

प्रश्न जी ने लिखा है :-

“ प्रवृत्तियों या साहित्यिक भाषा की जीतवाले की भाषा यही हिन्दी थी। ऐसा समझ है जीता रहा है। जैसे संस्कृत काव्य में जीत वाक्य की प्रकृति है वैसे प्राकृत प्रवृत्ति थी। इसका अभिप्राय यह है कि संस्कृत साहित्यिक भाषा की बाँर लोक में प्रवृत्ति भाषा प्राकृत की उसी तरह साहित्य की भाषा तो कम थी परन्तु भाषा सही जीती हिन्दी ही थी। ”

जब विद्वानों के कर्तव्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मुठ, सही जीती हिन्दी दिल्ली बाँर बैठ की ठेठ जीती है। मुठमानी के जाने पर जीतवाले, व्यापार एवं व्यवहार की भाषा के रूप में इसका प्रचार व्यापक हो गया। इस जीती का जन्म मुठमानी के दिल्ली जाने पर ११ वीं सदी है ही हुआ। आधुनिक हिन्दी की सभी जीतियाँ उस समय व्यक्तियों से विकसित हो रही थी। परन्तु इसका नामकरण १८०३ ई० में कलकत्ते में हुआ। दिल्ली के ऊपर पर वहाँ के साहित्यकार, विद्वान् एवं व्यापारी अन्य एवं जीतवाले के कारणों में बाध पाये तो बाँर उनको जीती वहाँ अन्य पाये ली।

इस जीती के बीच मुठ का सही सही जीती नाम प्रदान कराने में

१- जीवरी प्रेमल नागरी भाषा या इस देश की जीतवाले वाचस्पत्यमुनि की संस्कृत

१९३२ पृ० ६

२- डा० सितिकुंभ भिन्न 'सही जीती का वाचस्पत्य' पृ० १९

मृत कुछ नाम रहा और जीव गुण के ही कारण वह मर्यादी नीली की रंग प्रदान की गई ।

कतः यह न ही क्रमशः के माध्य के विपरीत लक्ष्यता तथा नीलता की पीछे है और न उर्ध्व के विरुद्ध गिराव या बुद्धिमत्ता की पीछे है। परन्तु यह एक प्रवृत्ति जीवपूर्ण एवं निर्मल रूप नीली है। इन साधारण के मुख्य रंगों के कारण उत्पत्तीसाध, स्वतन्त्र एवं गिरावट में ली नीली की प्रकृति प्रदान की। इन एवं उर्ध्व की विपरीत माफा न ही यह नाम प्रदान न किया, ली नीली नाम दिल्ली और वेष्ट की ली नीली की ही दिया गया था किन्तु अन्तर्गत तथा नाविकीयापास्यान लिं नये परन्तु नाम में पता की नीली के प्रयोग में भी यह नाम प्रवृत्ति ही गया।

ली नीली की उत्पत्ति-

ली नीली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्वयं की निरिक्त कारण नहीं बताई जा सकती। यह प्रकार ली नामकरण के प्रान की तरह ली प्रकार की व्याख्या की गई ली प्रकार उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रवृत्ति हैं। ली नये और पन रूपों की प्राचीनता के विषय में भी विद्वानों के बीच मत रहे हैं। ली नीली के फाफा वाचक नाम ली नीली प्रदाय ली की काव्य में ली नीली के प्रयोग करने का 'आवश्यकता' कहा गया है। ली नीली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रवृत्ति विभिन्न मतों में है जो प्रकृत थे। उर्ध्व के विमापती कतः है कि ली नीली की उत्पत्ति उर्ध्व से हुई है और क्रमशः के लक्ष्यता का कतः था कि ली उत्पत्ति क्रमशः है। उर्ध्व है

सही मौली की उत्पत्ति ज्ञान वाहे सर्व प्रथम जितनाय केक नाथी-व-साथी । १८२६।
 है। नाथी-व-साथी का कर्म है कि सही मौली की उर्ध्व में वे बाली फारसी के सम्बन्ध
 निशान कर भाषा की तरी । १८२६। किया गया।

डा० ग्रिफिन ने सातान्त्रिक १८२६ ई० की मुद्रिका में लिखा है:-

“ इस प्रकार की भाषा का सबसे पहले भारत में क्यों पता न था, क्योंकि वह संस्कृत
 में ‘‘ प्रभावान्नर’’ लिखा था वे एक निरुद्ध नई भाषा नई रहे थे। अपनी सही कर्म की
 पुष्टि डा० ग्रिफिन ने तिन्विष्टिक वर्षों में भी की है। उन्होंने हिन्दुस्तानी के दो भाग
 जताने, फलतः कान्पुर हिन्दुस्तानी और दूसरा छिदरी हिन्दुस्तानी छिदरी
 हिन्दुस्तानी की उन्नी उर्ध्व, रत्ना, दक्षिणी और हिन्दी पार विभिन्न शैलियाँ
 स्वीकार की और हिन्दी के सम्बन्ध में लिखा :-

“ इसका उद्देश्य वास्तविक है और यह लोगों के प्रभाव से किसी
 छात्रों के वारम्भ में प्रसिद्ध हुई है। निजामुल्लाह की प्रेरणा से संस्कृत की न प्रसिद्ध
 प्रभावान्नर लिख कर यह सब परिवर्तन किया। इस प्रश्न का नया भाग प्रकटित उर्ध्व में लिखा
 गया, जिसमें ऊँचीवाली सम्बन्ध पर नये हैं जबकि उर्ध्व का केक उन स्थानों पर फारसी
 के सम्बन्धों का प्रयोग करता है। ”

सही विचार का उपयोग एक ० ० के साधन में भी किया है :-

“ वर्तमान उच्च हिन्दी का विकास उर्ध्व से फारसी और बाली
 के सम्बन्धों की छोटकर उनके स्थान पर संस्कृत और हिन्दी के सम्बन्धों की तरी के भाव
 हुआ है। ”

१- भाषा प्रमाणानुसारात - हिन्दी भाषा - १९४६ ई० पृ० ४६ पर उद्धृत

२- डा० ग्रिफिन - तिन्विष्टिक वर्षों भाग १ सप्त १ सन् १९२० पृ० ४०

३- एक ० ० के - ९ हिन्दी भाषा हिन्दी छिदरेवर पृ० ४

डा० कपिलदेव सिंह ने लिखा है :- " यदि यह प्रश्न का कारण की पारवर्त्य विधानों द्वारा हुआ होना बाध तो यह स्पष्ट है कि यह प्रकार का प्रश्न हिन्दी । उड़ी गीती। में संस्कृत के तत्त्व हज्जों के प्रयोग की वीतकर हुआ है। पारम्परिक प्रभाव गिह्नी का " भाषा यौग वसिष्ठ " । १७४१ के। परिष्कृत हिन्दी में है किर्तन संस्कृत के तत्त्व हज्जों का भी प्रयोग हुआ है तथा वीतकराण का " का पक्ष पुराण । १७४१ के। की वली फारसी के हज्जों से उर्वा मुक्त है पक्षी की है उपस्थित है

यह एक नई वारणवी की भाषा है कि का ग्रिह्नी साक्ष के मतानुसार यह प्रकार की भाषा का भास में पता ही न था तो एक विविधी मि० गिल्लाफ्ट की उक्त उक्तान क्या है हुआ, वीर फिर की उनकी प्रेरणा है संस्कृत की बाधि ने एक नवीन भाषा का निर्माण किया, यदि यह विचार की मान भी लिया जाय तो डा० हज्जान मुम्बरास के कल की पुष्टि करनी पड़ी -

" यदि संस्कृत की नई भाषा नई रही है तो क्या वापसवर्तनी की कि उनकी नई हुई भाषा उन वाक्यों की पढ़ाई जाती थी उस समय केवल वही अभिप्राय है हिन्दी पक्षी है कि यह पक्ष की गीती वीतकर क्या है वीतों पर साक्ष करे। वतः का कर्तों के वाधार पर यह क्या का करता है कि संस्कृत की साक्ष द्वारा प्रसुक्त भाषा । उड़ी गीती । नवीन न वीकर नित्य व्यवहार की प्रवृत्ति भाषा थी, उक्तान प्रचार बहुत पक्षी है ही व्यवसायिक केन्द्र केन्द्रों, प्रवान नगरों, राजकीय कार्य, वन्ताराष्ट्रीय नीतिसाध वीर का व्यवहार में था।

उक्त वितरित सरकार एवं उक्त संस्थापित किया संस्थाओं का

१- डा० कपिलदेव सिंह - प्रभाषा भाषा उड़ी गीती पृ० ४०

२- डा० हज्जानमुम्बरास - हिन्दी भाषा १९४१ पृ० ४७

एत उर्दू के पत्र में था और उनका विचार था कि उर्दू में वे बरसी फारसी के शब्दों को
 चुन चुन कर निकाल कर और उनकी पुर्धि संस्कृत हिन्दी तत्काल या अतीतकाल शब्दों के
 द्वारा की और उस प्रकार १८०३ ई० में बलुजी लास ने एक नई भाषा नदी और उसका
 नाम वे सही नीली। उनके समयके वे शब्दों- द- साही, बीकन, गिरान, १८०० ई०
 के तथा सर समय बरसता था। वे तीन फीट विभिन्न कालों की सही नीली का नाम
 स्थान तथा बलुजीलास की जगह जन्मदाता करते थे।

डा० गिरान की काश्मिर हिन्दुस्तानी की सही नीली वे किसी
 उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मनी भाग। दुलाने। एवं परिष्कृत रुचिस्तुष्ट की भाषा का है।
 डा० गिरान ने हिन्दुस्तानी की सम्पूर्ण भारत की प्रसिद्धि हिन्दू भाषा का है। वह
 सही नीली का ही प्रसिद्धि रूप था। हिन्दुस्तानी नाम बहुत कम पूर्व ही कीर्ति द्वारा
 हिन्दुस्तान की प्रसिद्धि भाषा की दिया गया था। डा० शिखर मिश्र ने लिखा है :-
 " कीर्ति ने भारत जाने पर अपने व्यवहार में भी भाषा की प्रसिद्धि उके पाया।
 तथा; वे ही उन्नीसवीं की प्रथम भाषा नाम कर सही नीली का नाम चुन लिया। वे ही
 सही नीली नाम में हिन्दुस्तानी की नहीं। डा० ताराचन्द ने हिन्दुस्तानी की व्याख्या
 का प्रकार की है :-

" हिन्दुस्तानी की कोई नामकृत नहीं भाषा नहीं। वह सही सही
 नीली है जिसे किसी और नेत्र के बाध पाप रने बाध बहुत पुराने शब्दों के नीली
 कहते हैं। "

उन शब्दों के बाध पर यह कहा जा सकता है कि सही नीली हिन्दी
 का विकास उर्दू ^{ह. अ. ३६} एवं सही नीली के बाध पर विकसित हुई है। हिन्दी में वे संस्कृत ५^

१- डा० गिरान - भाषा एवं - भाग ६ खण्ड १ पृ० ४७

२- डा० शिखर मिश्र - सही नीली का वाच्यार्थ पृ० १६

३- डा० ताराचन्द - हिन्दुस्तानी । हिन्दुस्तानी पत्रिका। अ. १६३ = पृ० २१३

हिन्दी के लक्षण हज्जों को हटाकर जोह उनके स्थान में बरली फारसी के हज्जों के प्रयोग से बाप की उर्दू का निर्माण हुआ है।

उर्दू से लड़ी नीली की उत्पत्ति मताने वाले वक्त के बतिरिया दूसरा वक्त जमाना उनकी का वा वा वा कही है कि वफ़ा से ठीक का, ठीक से फास या जमाना का फास हुआ। जमाना में उर्दू के निर्माण से पूर्ण लड़ी नीली लड़ी की वक्त का वक्त के प्रत्यक्ष लक्षण है नास्तुल्यगुण, जमानाकाय रत्नाकर और जमाना जमानाकाय बादि ।

नास्तुल्यगुण का विचार है :-

“ परमान हिन्दी भाषा की बन्धुभि दिस्ती है परी जमाना से वह उत्पन्न हुई है और यही जमाना नाम हिन्दी का नाम। कारण में उसका नाम रत्नाकर पड़ा था। बहुत दिनों तक यही नाम रहा पीछे हिन्दी कहाली। कुछ और पीछे जमाना नाम उर्दू हुआ। वह फारसी के वक्त में अपना उर्दू नाम जमाना का रत्नाकर रत्नाकर केनानरी बज्जों में हिन्दी भाषा कहाली है।

परन्तु गुण की का वह कदा ठीक नहीं बज्जा क्योंकि वे जमाना से हिन्दी की उत्पत्ति सिद्ध करते हैं और हिन्दी की बन्धु भूमि में दिस्ती मानते हैं। दूसरे जमाना की दिस्ती की स्थानीय नीली सिद्ध करने में वे ही क्या बेरी समक से कीर्तनी विज्ञान जमाना उपस्थित नहीं कर सकते। छास 'जमानाकाय' में अपनी विचार का प्रकार जमाना सिद्ध है :-

“ फारसी में ही कुछ का और जमाना का ठीक जाकर नीली की लड़ा

१- नास्तुल्यगुण - हिन्दी भाषा भूमिका ।क।

कर दिया गया और उसका नाम पड़ गया सड़ी गोली। सड़ी गोली किसी गोली का नाम नहीं है। वह तब सिन्धी की तारीफ है। फारसी बायाँ गोली है।

परन्तु ये सब कथन प्रमाणात् सत्य नहीं ठहरते क्योंकि सारा कारण सम्पन्न प्रभाव है। अतः श्रीपथ में डा० सपितीय सिंह के अनुसार यह सत्य वा यकता है :-

“ सड़ी गोली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न बहुत अवधि तक विद्वानों के मन रहे। जिसका प्रभाव सारा भाषा के लिए प्रभावना और सड़ी गोली में हुए विवाद पर भी पड़ा। सड़ी गोली की उत्पत्ति का यथार्थ परिणाम न होने से यह विवाद कुछ लोगों की भासा सुनी में होता दिखाई दिया। उन लोगों की बहुत ही दलीलें थी इन्होंने सभी सभी मत की पुष्टि में ही वास्तविकता से दूर होने के कारण तद्बुद्धि ही दिखाई देती है। यदि सड़ी गोली की उत्पत्ति सीधे प्रश्न से दूर होती तो भाषा पुरातन युगका में ही इस भाषा का केन्द्र से इस सड़ी गोली का ही प्रकार पाते परन्तु इस भाषा का सामान्य रूप भी सभी चीज में मिला हुआ है। और यह वहाँ की साधारण यकता की भाषा है।

माहृ काम्पायस रत्नाकर ने फेराजी की ‘वा’ कारान्त प्रुधि की भी सड़ी गोली की भी विशेषता से लेकर सड़ी गोली की फेराजी और प्र-भाषा के सम्बन्ध का परिणाम सीमा था। उन इस प्रकार के प्रश्नों का भाषा विद्वानों द्वारा है सही निराकरण ही हुआ है। यहाँ प्रश्न है सड़ी गोली की उत्पत्ति विषयक विद्वानों की चारणा का कारण यकता देना अप्रासंगिक न होगा। यदि सारा भाषा ही सड़ी गोली का प्रकार दिल्ली और वागदा की प्रभावता के कारण है। दिल्ली प्र-भाषा

१- महारत्ना कामानदीन - हिन्दुस्तानी पत्रिका अक्टू १९३६ पृ० २५९

२- डा० सपितीय सिंह - प्र-भाषा नामक सड़ी गोली पृ० ४५

जीव है लीं हुआ है ; तथा बागरा उसी क्रम माया जीव के मध्य में है। अतः सही नीती का प्रकार क्रम जीव में होते हैं लीं की क्रममाया है सही नीती की उत्पत्ति जीव की मूल हीनी सब थी।

डा० कपिलेश्वर ने लिखा है :-

परन्तु सही नीती उसी तीरणी अपरूप की वंश है जिसकी कि क्रम-माया कादि अन्य मायायें। अपरूपकात् । १० वीं सताब्दी से १४ वीं सताब्दी से १४ वीं तक। की है। कि मायायें, जोह विहीं नाम पथिनीं एवं चारण कथियां कादि की रचनायें की हैं वेनी है यह स्पष्ट ही जाता है कि सही नीती का अस्तित्व जीव रूप में उसी प्रकार पाया जाता है जिस प्रकार क्रम अपनी पंजाबी कादि अन्य मायायें का ।

अतः यह निर्णायक रूप से कहा जा सकता है कि सही नीती की उत्पत्ति न हुई है हुए है और न क्रम है, परन्तु वह नीती पुरुषोत्तम अपरूप है जिसका एक सत्य नीती की जिसका नीतमात्र के रूप में बहुत प्राचीन काल से व्यापक प्रकार का। हुई का ही ज्ञान पुराना अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। क्रममाया है भी यह पीछे नहीं जाती परन्तु सही क्रममाया है भी नहीं अधिक प्राचीन एवं व्यापक व्यावर्ण्य मिली है। पंजाबी कादि है भी इसकी उत्पत्ति माना हुआ संत नहीं।

सही नीती का प्राचीन रूप-

सही नीती का प्रकार मौखिक रूप में क्रममाया है क्रम प्राचीन नहीं है परन्तु साहित्यिक रूप में उसका एक प्रकार क्रम माया है साथ न हीकर उसके

मरवाए हुआ उसका मुख्य कारण था कि कंठि प्रिय हिन्दी भाषी हिन्दु साहित्यकारों ने वासी हुई काव्य भाषा ही का अपनी रचनाओं में प्रयोग किया और प्रायः कम तक करते रहे हैं। इस काव्य भाषा के प्रभाव नीचे से ऊपर रही वासी हिन्दी भाषियों ने अपनी जीवनास की सही नीती या सहिन्दी भाषी साहित्य रचियों ने किन्हीं सही सही नीती हिन्दी से लाभ पढ़ता था नहीं रचना की है।

कथल में बात यह है कि जिन लोगों ने जनता की जो कुछ अपनी छोटों के रूप में दिया वह कम सही नीती। जनसाधारण में प्रसिद्ध नीती। वे ही दिया। इन कम साधु महात्माओं ने जनसाधारण में प्रसिद्ध की हिन्दी की अपनी समिन्धित का माध्यम बनाया चाहे वे दक्षिण और मराठा के महानुभाव और नारदों वादि पंथों के संत हों, चाहे मध्य क्षेत्र के नाथ पंथी और कबीर पंथी संत हों जन्मा पंथ के विरक्त गुरु हों। यहाँ तक कि कम कुलमानों और संतानों तक की भी जनसाधारण से कुछ अपने का ऊपर बाधा थी उन्हीं की भी हिन्दी के गारा कथा। ऊपर भास में नाथ पंथी साहित्य बहुत पुराना है उन्हीं नाथों ने सही नीती हिन्दी की बसाया। कवि उनकी भाषा समुल्लेखी या शिखरी है तथापि उसका ठाँव सही नीती का है। नाथों का समय ११ वीं से १४ वीं सताब्दी तक माना जाता है। उनकी भाषा में परिष्करी हिन्दी विशेषतया सही नीती के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। उनकी भाषा के सम्बन्ध में वाचार्थ रामकन्द शुक्ल ने लिखा है :-

“ नाथ पंथ के रचियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से जिसका ठाँव नागर वक्त्र या जमाना का था वला एक समुल्लेखी भाषा का उदाहरण दिया जिसका ठाँव कुछ सही नीती लिखे रावस्थानी था। ”

नार्थों के कुछ वस्तुनिष्ठ श्रेष्ठ डा० क्वारी प्रसाद की लिखी के यहाँ प्राप्त हैं।

नार्थों में सर्वप्रथम गीतनाथ बाबू हैं जिसका समय ११ वीं सदी का अनुमान ठहरता है। चन्द्रवर तर्मा गृहरी के पुरानी हिन्दी में तथा ५० रामचन्द्र सुन्दर के सुवर्णित की प्रतिका में इस सत्य का निरूपण किया है। उपाहरणार्थ -

“ बन्धाणिर्वाँ त्वेष्ट तारुण्य कस्य कश्चिज्ज

का वासि शिदि उच्चिष्ठ नास्तिन्ध्याय मुचिज्ज । ” १

तथा

“ नव वल परिया माणा नपणि कङ्कण मेहु । ” २

ज उपाहरणों में अफ्रेष्ठ सन्धी उचितकी, विन्दत करिया बादि में उचितकी दीनी बादि हम हम माणा के हैं और करिया बादि लड़ी नीली के।

उक्त साहित्य में इस भाषा के रूपों की प्रकृता है -

क- क्वेति वैतिवा, पेति निवास्तिवा बादि शिदि रातिवा बीया ।

पातास को गंगा क्वेति क्वेतिवा तथा विमल विमल जल बीया । ” ३

ख- बाकी भारी भरि भरि बाकी गीतनाथ भरि भरि लाकी ।

करे न पारा बादि नाव, त्वेष्ट उर गूर न बादा विनाव । ” ४

शिर्वा की भाषा में भी लड़ी नीली के प्रचुर प्रयोग प्राप्त होते हैं। यद्यपि उनकी भाषा वैद भाषा विभिन्न अफ्रेष्ठ अर्थात् पुरानी हिन्दी की काव्य भाषा है, तथापि उनका डाँचा लीकनी से उत्पन्न अफ्रेष्ठ अर्थात् हम और लड़ी नीली । पश्चिमी

१- बाबाय रामचन्द्र सुन्दर - सुवर्णित की प्रतिका डा० १२०६ पृ० १ वी ४

२- वही

३- डा० कङ्कणास नगरम् प्रथम संस्करण पृ० ४

४- वही

चिन्दा । का ६। तिब्बती का अनुसूची । मिश्रित। भाषा की यह परम्परा १५ वीं
सताब्दी तक कभीर बापि में मिलती है।

बाबाय रामचन्द्र कुस्त ने लिखा है - नाथ पंथ के उन योगियों
ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से बिल्कुल ठोस नागर अपभ्रंश
या कुवभाषा का या कलक क अनुसूची भाषा का सहारा लिया बिल्कुल ठोस कुछ
तुड़ी नीली छिमे रावस्थानी था।

नाथ या सन्त साहित्य के अन्तर्गत चिन्दी के सर्व प्रथम कवि चिन्दीनि
रावस्थानी या छिमे में काव्य रचना की वन्द तर्कित होती है। उनकी रचना 'पुछी-
राव राखी' में भी तुड़ी नीली के रूप उपलब्ध होती है परन्तु यिन्ना उनकी प्रशिक्षण
कलक कर टाउ होती है।

वन्द के कुछ अन्य उपरान्त छादीयर का समय है चिन्दीनि 'छादीयर
पदसि' नामक सुभाषितों का एक संग्रह किया जो प्रायः प्रायः माना जाता है। यह
संग्रह में तुड़ी नीली के रूप मिलती है :-

फुठे गर्व पराम्पराति लखा रे कन्त भीर की ।

कण्ठे पाग निवृत्त पाद लड़ा भी मल्लीव विभु ॥ २

छादीयर के पञ्चाल सुहरी का नाम जाता है।

वे भी सुहरी की रचनायें प्रायः प्रायः नहीं हैं परन्तु फिर भी
उनकी एक एक अत्रायणिक छिमे भी नहीं किया जा सकता। सुहरी कुछ रचना कवि नाम
की ज्ञाप होने के कारण छिमे की माननीय पड़ती है। सुहरी सुखान कवियों की परम्परा KI

१- बाबाय रामचन्द्र कुस्त- चिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १५

२- डा० शिवप्रसाद मिश्र - तुड़ी नीली का काव्यीय पृ० ११ पर उद्धृत

के प्रधान थे जिन्होंने सही नीती में रक्ता की है। सुगरी ने फारसी के सम्बन्ध में वाप, पिलान्, होते हुए भी, हिन्दी में रक्ता की है। सुगरी के सम्बन्ध में एक बात बालक्य बालक कही जाती है कि उन्होंने दिल्ली के ११ भाषाशास्त्रों का साजन काउ किया था तथा सात भाषाशास्त्रों के यहाँ नौकरी की थी। हिन्दी के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी विचार प्रकट किये हैं :-

“ हिन्दु का मेरी पुत्र थी क्योंकि यदि वाप उस विषय पर अच्छी तरह से विचार करें तो वाप हिन्दी भाषा की फारसी से किसी प्रकार भी हीन न पावेगी । ”

सुगरी ने सही नीती में जो का साधारण में प्रचलित भाषा थी बहुत ही फीसिया, मुकरिया और कविताएँ रिलीं। उन्होंने वाप भाषा की त्याग कर का भाषा में रक्ता की।

अतः का प्रकार हम यह कह सकते हैं कि १४ वीं शती के अंत तक हम, कभी सही नीती वादि का उल्लेख ही नहीं पाते। का युग के अन्त के आगे कीर सुगरी ने उस युग की नीज्वात की भाषा में कुछ फीसियां कुछ मुकरिया तथा दो सुगरी वादि की फुटकर रक्ताएँ कीं। उनकी भाषा है सही नीती का प्राचलिक रूप ही कहलाती है वाप ही उसका अपना बल बलित्व भी स्पष्ट दिखाई देता है। सुगरी की का फीसियों की भाषा वास्तविक हिन्दी के अन्त निष्ठ है :-

का वात नीती है परा, लके गिर पर बीधा परा ।

पारी कीर का वाली फिर, नीती लले एक न गिर । २

जो लोग यह कहते हैं कि सही नीती का वाचिन्कार लक्ष्मीधर

१- डा० रामकुमार कर्मा - हिन्दी वाचित्व का वाचिन्कार लक्ष्मीधर द्वितीय संस्करण

पृष्ठ १०६ पर उद्धृत
२- लक्ष्मीधर - हिन्दी भाषा कीर वाचित्व का विकास पृ० १६६० पृ० १४१ पर उद्धृत

तथा सदा विमल ने किया वे भी गलत हैं क्योंकि लक्ष्मणजी ने जिस भाषा का प्रयोग अपनी ग्रन्थ में सागर में किया है वह उनकी मातृभाषा। बागरे की बोली। थी जिसका प्रकार बहुत पहले से ही रहा था इसके अतिरिक्त रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषाभाषा-वर्णिक' १९७४ ई० तथा बालराम का 'कनकपुराण' १९७६ ई०। भी विष्णु हिन्दी में है पहले से ही उपस्थित था। उन ग्रन्थों की भाषा सही बोली की प्राचीनता के पीछे हैं। बाबाजी प्रवर डा० इवारी प्रसाद त्रिवेदी ने एक लेख विशाल भारत वर्ष १९४० ई० में २०० वर्ष पुरानी सही बोली के फलों के नमूने बरुहथि 'फल कीमुदी' से प्रकाशित किया हैं। उन फलों के बाजार पर उनके विचारों का यह निष्कर्ष है :-

१- उन दिनों हिन्दी राज्य एवं अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी जिसमें फल लिखे जाते थे।

२- वह भाषा की "हिन्दुस्तानी" नाम की फलों ने नहीं दिया और न पहले उर्दू भाषा का ही नीप होता है।

३- उन दिनों फलों की विष्णु संस्कृत होती होती हुए भी उनमें बारी फारसी के शब्दों का प्रयोग होता था।

४- यह कारणों कि सही बोली में नव जिन का प्रारम्भ लक्ष्मणजी बादि ने प्रेरणा पाकर किया नितान्त काल है बाबाजी ने जाने लिखा है :-

" बहुत पहले सही बोली में बाब की हिन्दी के समान उच्च नव लिखा जाता था वह व्यवहार की भाषा थी और विष्णु संस्कृत होती में उर्दू फल लिखे जाते थे। "

अतः उपरोक्त विवेक से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'सड़ी नीली' का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से ही होता रहा था रहा है। छिदी, नाथी, तन्ती एवं का कपड़ी की रस्सियों रस्सियों में उस भाषा के प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होते हैं तन्तार कीर, सुवती बादि की भाषाओं में उनके कुछ रूप के वस्तु होने लगे हैं छिफियों के क्लाम भी सड़ी नीली में हैं।

सड़ी नीली की व्याख्या एवं उसके विविध नाम-

सड़ी नीली का रीत-

सड़ी नीली का प्रचार पश्चिमी रुहेलाण्ड की ओर उन्नीसवीं शताब्दी की ओर बढ़ता जा रहा है। प्रचुरता यह रामपुर बिहार, मुरादाबाद, मेरठ, मुजफ्फरगढ़, मथुरापुर तथा देहरादून के पहाड़ी भाग तथा बन्नाबाद, कालकिया और पटियाला के पूर्वी भागों में होती जाती है।

सड़ी नीली की भाषाई सीमाएँ तथा सीमायुक्त भाषाएँ :-

भाषाई दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी के उत्तरी पश्चिमी कोने में सड़ी नीली का रीत है। इसके पश्चिम में, पंजाबी, नाग एवं दिल्ली तथा करनाल की राजधानी मिश्रित उपाध्याय नीली जाती है। इसके उत्तर में पहाड़ी भाषाओं का रीत है। देहरादून के पहाड़ी भाग में पहाड़ी काँ की सीमायुक्त नीली नीली जाती है। ऊपरी कुवाँ के मुता नदी के दूरी पार पंजाब प्रान्त का प्रारम्भ हो जाता है। और मुता नदी के दूरी-दूर पश्चिमी बिहारे पर पश्चिम से उत्तर की ओर दिल्ली करनाल

तथा बम्बला के बिले हैं। बिस्ती । छर की छोजर । बिटे तथा कलाठ की नीली
 भांग तथा गारु ह की प्याली एवं राजस्थानी से अत्यधिक प्रभावित हैं। बम्बला के
 पूर्वी तथा तथा कलाठिया एवं पटियात की नीली वस्तुतः हिन्दुस्तानी ही हैं। छर
 प्याली नीली की सोपाये की कल पाणा के रूप में लड़ी नीली। हिन्दुस्तानी। अत्यन्त
 होती हैं।

बीमाकरी प्रजातों में अब पर उन स्थानों की प्याली, राजस्थानी,
 तथा पूर्वी हिन्दी का प्रभाव पड़ता है। लड़ी नीली का तीन मुस्लिम राज्यों का केन्द्र
 होने के कारण उनकी संस्कृति तथा भाषा का प्रभाव भी नीली पर प्रकट भाषा में
 पड़ा है।

लड़ी नीली की भाषात्मक स्थिति से यह स्पष्ट है कि वह उस
 स्थान की भाषा है जहाँ अब-भाषा बोरे बोरे प्याली में मिल जाती है। डा० 544
 नारायण तिवारी ने इसी पुष्टि के लीखों के आधार पर के कारण के आधार पर की है।

हिन्दी " लड़ी नीली " के विविध नाम-

प्राप्त का स्थान के कारण अब भाषा के नाम भी कई हो
 गये। भाषा के रूप में हिन्दी । लड़ी नीली। के अतिरिक्त नामरी, हिन्दी, तरहिन्दी,
 हिन्दु, हिन्दवी, हिन्दुवी, बखिनी, बली या बली, हिन्दुस्तानी या हिन्दीस्तानी
 सेना, ऐसी कई नामों का भी प्रयोग होता है।

हिन्दी- प्राचीनकाल में हमारे देश की बम्बलीय । नरतल्लु के

१- डा० उपनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास पृ० २१०-२१

जिसे हिन्दु लोग अपनी निम्न व्यवहार में प्रयुक्त करते थे और जिसे ब्राह्मण एवं कारवी के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया था।

चन्द्रमौली पाण्डे ने लिखा है -

दिल्ली और उसके आस पास के हिन्दू और सिन्धुवासी मुसलमानों की जीवनाश्रय तथा उनकी पुस्तकें साहित्य की रक्षा की भाषा हिन्दुवी हिन्दु का हिन्दुवी भाषा है। साहित्यकारों ने इस हिन्दुवी में अपनी पुस्तकें रानी केतकी की कहानी लिखी जिसकी भाषा हिन्दुवी हूट और किसी अन्य भाषा का पुट नहीं है। साथ ही यह विचार है कि इस भाषा की प्रमाण भाषा है जो की लोग बोलते हैं बोलते वाक्यों में जीवनी वाली है। साहित्यकारों के भी लोग दिल्ली के सिन्धुवासी लोग हैं जिनमें अधिकतर मुसलमान हैं। अतः उनके अनुसार यह स्पष्ट है कि यह हिन्दू एवं मुसलमान दोनों की भाषा थी केवल हिन्दुवी की ही नहीं। साहित्य का उद्देश्य साधारण रामकन्द सुन्दर ने इन्हीं के हवालों से दिया है-

“ एक दिन बड़े बड़े यह बात अपनी क आन में बड़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिसे हिन्दुवी हूट और किसी भाषा का पुट न मिले --- बाहर की भाषा और गहरी हूट उनके बीच में न हो। हिन्दुवी पर भी न निकले और भाषा पर भी न हो। बड़े बड़े बड़े लोग- बोलते हैं बोलते वाक्यों में जीवनी वाली है। क्यों का क्यों बड़ी सब ठीक रहे और हाथ किसी की न हो। ” साहित्यकारों की अपनी पुस्तकें रानी केतकी की कहानी में दिया हिन्दुवी की भाषा का नमूना इस प्रकार है :-

“ एक दिन महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन भादों के रूप रीति लगी, और दोनों के बीच में यह वाक्य यह कही पावत जिसे उह

१- चन्द्रमौली पाण्डेय - उर्दू का रहस्य पृ० ४०

२- रामकन्द सुन्दर - हिन्दु साहित्य का इतिहास पृ० ४९० से उद्धृत

“ हिन्दुस्तानी मुख्य रूप से गंगा के मुहाने की भाषा है यह भारत के कर्माग्रहीतीय व्यवहार की भाषा है। फारसी तथा देवनागरी दोनों लिपियों में लिखी जा सकती है। साहित्य में प्रयुक्त होने पर जहाँ फारसी तथा संस्कृत दोनों के शब्दों की बजाया जाता है।” डा० उपर्युक्त यूरोपियन विद्वानों ने हिन्दुस्तानी का प्रयोग ठेठ हिन्दी के रूप में किया है जिसे कैलाश ने उधरी भारत की भाषा माना है। जहाँ जहाँ डा० जय नारायण तिलारी ने भी किया है।”

दक्षिणी या दक्षिणी :-

१३ बी० शताब्दी में मुसलमानों के वाक्यव्यवस्थापन भारत में होने ली, १३ बी० शताब्दी के अन्त्य में मुहम्मद तुगलक के साथ बी० साहित्यकार दक्षिण में वे कहीं रह गये और वे लोग वहाँ राज्यालय में फुलती कलती रहे। जहाँ-तहाँ राज्य के हट जाने पर बीजापुर, गोलकुण्डा, बीजपुर, बरार एवं बलसोन्नगर की मुसलमानों वंशजों का निर्माण हुआ। इन राज्यों के मुसलमान जिस भाषा का प्रयोग करते थे वह दक्षिणी या दक्षिणी कहा जाता है। इस भाषा की उत्पत्ति अपनी राज्य भाषा भाषा या क्योंकि वहाँ के लोग फारसी एवं बर्मी के सम्पर्क में भी हुए थे। यह कना अनुचित है कि दक्षिणी लिखित रूप से इन मुसलमानों द्वारा फारसी की भाषा तथा साहित्य के साथ ही दक्षिण में जाये थे। दक्षिणी पर उत्तर की पूर्वी दक्षिणी सीमाओं का प्रभाव १ प्रकृत भाषा में पड़ा। दक्षिणी पर दक्षिण की भाषाओं का भी उत्तर पड़ा और जहाँ व्यवहार की बहुत प्रभावित हुआ। उदाहरणार्थ हिन्दी के 'जा' एवं 'हो' के स्थान

१- डा० ग्रियर्सन- लिखित रूप से 'जा' लिखा हुआ ० भाग २ पृ० ४७

२- डा० जयनारायण तिलारी- हिन्दी भाषा का उत्पन्न और विकास पृ० १६८

वसिनी में मराठी के "न" की जगह "व" की जगह लिखा गया। वसिनी के दो रूप मिली हैं एक साहित्यिक दूसरा बोलचाल का। विकास का की दृष्टि से उनके बीच तोषण है। उनका वार्षिक स्वल्प वर्णों से सम्बन्ध होता है। दूसरा स्वल्प वर्ण है पूरक जोड़ा का है। तीसरा स्वल्प वसिनी के विकास काउ का है जिसे सभी वसिनी के निवासी वसिनी का प्रयोग करते हैं। वसिनी का साहित्य नागरी और फारसी दोनों लिपि में है। किन्तु अधिकतर साहित्य फारसी लिपि में है। हिन्दी ।खड़ी बोली। के विकास में वसिनी का विशेष हाथ रहा। वसिनी में हिन्दी के विविध रूपों का सम्मिश्रण हुआ। हिन्दी । खड़ी बोली । का प्राचीनतम रूप वसिनी में ही लिखा गया और सभी लोग नहीं कि या खड़ी ने उससे भारत की भाषा खड़ी की भी प्रसूत भाषा में प्रभावित किया। वसिनी के प्रथम साहित्यकार स्वाधा कुम्भाका-
वास, गणेशराय मुन्नाय हुंसी हुंसी उनके साहित्यिक व्यक्तित्व हुंसी, निवासी, काशी, गुरुमन्त्री, सुभाष, वासिनाथ साधुजीराजी, जानिम हुंसी, जनाजी, हरतमी नागरी बादि बहुत से उत्कृष्ट कवि के कवियों एवं गणकारों ने प्रायः १० या १२ के बाद वसिनी के साहित्य की मरा। वसिनी के फल का कृता :-

‘ के वं पाँच बन्धर धुं फला यो ल ।

के पाटी और पानी ज्वारा तु गिल ।

मरं वासिनाथ वं बीया जवा वं यो पाँच ।

हर एक एक धुं सात गुन वं यो पाँच । ’ १

वसिनी के रूप का कृता :-

‘ हुंसा मारने का तरीका यो है कि जाला दोनों बंधन करे।

साम्ब या के मुकामिल और दोनों बाता के दरमियानी छटा की और पुनः भी नाम सब
 मुं पर हु बाता उतारे या सब सुनत है।

उसके नामा के स्वल्प की वतकर यह मानाच भिस्ता है कि यह
 नामा फारसी लिपि में लिखे जाने तथा बरनी फारसी के व्यंग्यारिक हव्यों के प्रयोग
 होने पर भी हिन्दी के बिने बाव सब लड़ी नीली करते हैं दूर नहीं है।

रैला-

उई नामा के लिख हिन्दी के नाम कृष्ण नाम रैला भिस्ता है
 पर रैला कवला है उई फा की नामा का नाम बा। और किसी कृष्ण नाम रैला
 कवलाकृष्ण का कहीं भी उल्लेख नहीं है। नीलवास की उई नम के नामा के लगे में कला
 प्रयोग नहीं होता था।

बी फलुलि ने रैला हव्य की निरुक्ति पर विचार करते हुए
 लिता है :-

“ रैला हव्य की निरुक्ति की लक्ष्मियां यह बताते बाती है कि विभिन्न
 नामाओं के हव्यों के मुकामिल कमानों के बलकाय है जो रैला पुष्ट या कलकृत भिना
 गया है जो है की बीवार की पुने या बीरु है फलुलि ने पापवारी समवारी, कलकृत
 और कवाकट के लिख रैला करते हैं। उई भी मुकामिल कमानों से मिल कुछ कर नी है
 बीरु कला नाम रैला फलु नया। ”

रैला फारसी के रैलन मखर (बात) है न्या है बी न्याने व्याप

१- नीला कवला कवलापुल कलास - रिवादा लाम्बुक पृ० ४०२ पर उल्लेख

२- बी फलु लि - हिन्दी उई, हिन्दुस्तानी पृ० २०

कर ने कियो बीच की कालि में डाली, नर बीच बनाने और मांहु करी के नानी में बाता है।

हेला हिन्दी की वह होती है किन्हीं फारसी हज्जों का मिश्रण है। हेला और उर्दू पनापनाबी नर है, नर उर्दू की हेला नाम की एक होती ही कहा जाता है। वास्तव में हेला मुहम्मद की भाषा की कहा जाता था एवं हेला हिन्दी की।

भाषा के अर्थ में हेला का प्रयोग उर्दू से अधिक प्राचीन है। दक्खिनी साहित्य में यह हेला की परम्परा किन्हीं स्थानीय गीतनाट की भाषा का भी प्रभाव 'रमल' 'कुल' बादि स्पष्ट दिखाई देता है १७ वीं से १८ तक व्याप गति से चलती रही। बीसवीं की दक्षिण किन्हीं से उर और दक्षिण के कवि एक दुसरे के सम्पर्क में बाध दिखती परन्तु के कवियों की एक विशाल हिन्दी की हेला परम्परा बाध ली। इन कवियों ने यह होती की अपनाया परन्तु बीरे बीरे उसे बली फारसी का परिधान पहना कर नवीन रूप से छाता की बागे बहार उर्दू के नाम से प्रसिद्ध हुई। बली फारसी के बाधित्य से अर्थ में हिन्दीमा अन्तर्गत होगया। बाधार्थ कुल ने लिखा है :-

' उर्दू की हायरी में की पीड़ा बहुत हिन्दीमा कुल हिमा कि या वह ललक जाने पर नाशित के बाध से दूर किया गया। कतः सुधरी के नाम से किन्हीं भाषा का हिन्दी हिन्दी नाम से की गणीत हुआ था और की दक्षिण भारत में हेला नाम से कर १७०० से १८ तक फुलती फलती रही वही एक बात के उपरान्त विविध रूप से प्रभावित न हो ली। '

अध्यापक गीतलीय के हज्जों में ' वास्तव का बाध नरकर १७०० से के बाधार्थ हज्जों से एक बला नर निकासी गरी। '

१- ५० रामचन्द्र कुल - हिन्दुस्तानी का अर्थ पृ ७

२- अध्यापक गीतलीय ' केर की कुल नाम १ पृ २७

डा० उपकाराधिका विहारी ने रेली की हिन्दी की छठी पाया

६- रेली हिन्दी की छठी है जिसमें फारसी उर्दू का सम्मिश्रण है। प्रायः
जो रेली तथा उर्दू की प्रकृत एक दूसरे का पर्यायवाची समझते हैं। परन्तु वास्तव में
यह सही नहीं है। उर्दू की अपेक्षा रेली की व्यापकता अधिक है। जो जगहों में यह
निष्कर्ष निकलता है कि रेली न तो उर्दू की छठी है या उर्दू से मिली है। परन्तु
पश्चिमी हिन्दी के एक की रेली कहा गया है। रेली हिन्दी की एक विशेष छठी
है जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी तथा जिस पर मुसलमानों का नाम का प्रभु प्रभाव
है। ~~रेली की पाया का प्रभाव हिन्दी में~~

उर्दू -

भारत में उर्दू भाषा का विकास मुसलमानों विशेषतः मुगलों

१- डा० उपकाराधिका विहारी - हिन्दी का उद्भव और विकास पृ० १६७

के जाने के बाद हुआ। तुलसी राम उरु का बंध है सादी रेश या मल। यह बंध में यह
 राम नाम के साथ जाता है बाबा और दिल्ली के राजपूत की उरु-२- मुबल्ला या
 कमान शिबिर क्या जाने ला। श्री बल्लार या शिबिर में एक मिथिल नामा का
 कमान हुआ कि कमान-२-उरु क्या जाने ला। साधवत्ता सां ने दरिया र छाफर में
 एक स्थान पर कहा है -

“ यहाँ साधवत्तानामा के सुकन्यानी ने मुकिक होकर मुसादिक
 कन्यानी से कभी कभी हुकूम हुकूम निकाली और बाबी कन्यानी और बल्लार में लड़क
 करी और कन्यानी से कहा एक कमान फा की जिसका नाम उरु ला । ”

श्री उदरण उरु नामा का भी उदाहरण है :-

फरली बासाफिया के लोक ने उरु के सम्बन्ध में एक प्रकार लिखा

है :-

काली उरु साधवत्तानी लुटिया की भी कमान है। और साथ फिदा की ल
 कमान की टक्यात है। साधिव कमान साथ बंध और कमान और कबीर साधवत्तानी की
 मुताबकी से बाप से गर्व न थी । ”

मुबल्ला बल्लार नामा में कबीर ग्रन्थ ‘साधवत्ता’ यह विचार प्रकट

किया है :-

काली नाम की घर लल्ल बागता है कि बगारी कमान कमान-नामा
 से निकली है। कमान-नामा साथ हिन्दुस्तानी कमान है। डा० तिमारी ने जीव जीव के
 सम्बन्ध में प्रकाशित जीव के पृ० ४८८ में उरु के सम्बन्ध में लिखा विचार निम्नलिखित प्रकार
 से दिया है :-

१- कमान-नामा नामा- उरु की कमान पृ० ६

२- श्री बाप नामा- फरली बासाफिया कन्यानी नाम ४ पृ० २४५

३- मुबल्ला बल्लार - बाप बगार कमान उरु की तारीख पृ० ६

सुसज्जनी एवं वरगरी वातावरण में पल्लवित होने के कारण जका डाँचा उज्ज-वज्ज, व्याकरण, छिपि, साहित्यिक परम्पराएँ तथा साहित्यिक रुढ़ियाँ आदि सभी पूर्ण रूप से विविधी बन गये हैं। यदि वास्तव में हिन्दी के उन विविध भेदों हिन्दुस्तानी बख्तनी, रेलवा, ऊई, हिन्दवी आदि पर विचार किया जाय तो थोड़े बहुत अन्तर के साथ जका जमी एक ही वस्तु के प्रकार हैं। उन जका वापार तथा गठन रकता है वह सही नीती के ही साक्ष्य एवं प्राप्तीयता के वापार पर निर्भर प्रकार है। जका उज्ज व्याकरण का डाँचा, किया पर, पर विन्धियाय वा वाक्य सही नीती की ही माँति हैं। उन सब रूपों में सही नीती की प्राप्तीयता तो प्राप्ति होती है ही साथ ही साथ उसकी व्यापकता की पूर्ण पुष्टि भी हो जाती है।

सही नीती के सम्बन्ध में कतिपय प्राप्तिगों का विचारण-

इस समय तक लोगों में यह धारणा रही थीर इस वृत्ति में बन भी है कि सही नीती का जन्म कम जाना है हुआ। ऐतिहासिक वृत्ति के वापार पर यह छिद कर दिया गया है कि सही नीती कम जाना है स्वतंत्र नीती भी थीर है। सही नीती भी उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि ज्ञानाणा वापि। सही नीती में लिखी हुई कई रत्नार्थ प्राप्ति हुई हैं और कई छिपों के नाम ज्ञात हुए हैं। जिनमें कीर सुधरी का समय संवत् १३१२ से १३८२ तक है। जती भी पूर्व विज्ञ की नवीं छाया में लिखी 'सुसज्जनाला' नामक प्राकृत भाषा की पुस्तक में भी, भीर वापि हैं। यह जन्म देह की भाषा का जन्म दिया गया है। सम्बन्ध के अग्रज व्याकरण में वाकारान्त सम्ब के उन साथ कर गिट छिप गये हैं, जो सही नीती की विशेषता है।

दुबरी प्राँति यह फैली हुई है कि वायुनिक चिन्वी नव की भाषा
 कई से बरनी, फारसी के शब्दों की विकास कर ज्वाह नई है। यह कल्प भी संकेत
 निराधार है। उन ऊपर यह पुके है कि सही नीली बहुत प्राचीन भाषा है। यह प्रारम्भ
 से दिल्ली के प्रान्त की भाषा थी। मुसलमानों ने यहाँ जाने पर उसे बसाया और
 वे जहाँ रफाई करे ली। फरि उन रफानाओं की भाषा नीलास की होती थी और
 बकिनास शब्द ठेठ चिन्वी के होते थे, बाद में उही में बरनी-फारसी के शब्दों का बला
 प्रारम्भ किया, जिससे कई का विकास हुआ। मुसलमानों के प्रचार के साथ साथ सही
 नीली का भी प्रचार हुआ। अब सही नीली में राज्य राजन से सम्बन्ध होने वाले बरनी
 फारसी के शब्द भी रहे होंगे जो बीरे बीरे नीलास के शब्द बन गये। बीरे बीरे सही
 नीली दुबरी भारत की राष्ट्र भाषा थी जो नई बीरे शिष्ट अनुदाय के परम्पर के प्रमाण
 में जाने ली। पर यह हम कई फारसी के तात्पर्य से है ली हुई भाषा से भिन्न था।
 हमें केवल नीलास के बलाय प्रगति किसी शब्द ही रहे होंगे और कई ली अभिवाँ
 की नीली में संस्कृत के सत्य शब्द सही भाँति पाए जाते होंगे जिस प्रकार कई ली
~~अभिवाँ की नीली में संस्कृत के सत्य शब्द सही भाँति पाए जाते होंगे~~ मुसलमानों की
 नीली में किसी शब्द। यही नीली जाने कत्तर चिन्वी नव की भाषा हुई।

दुबरी प्राँति सही नीली नव के सम्बन्ध में यह हुई कि सही नीली
 न नव की उत्पत्ति कीर्णों के भाषा में हुई है किन्तु कीर्णों के भाषा में लिखे जाते सर्वप्रथम
 लोक सल्लोकास और कलम मिल थे। कलम मिल की भाषा का प्रचार नहीं हुआ, और # 1
 सल्लोकास की भाषा में वायुनिक नव का प्रभाव नहीं पड़ा। उनके अतिरिक्त
 क्वाकुरास और भावस्था ही सही नीली में लिखे पुके थे। क्वाकुरा की पात राशी के
 परम्परा भाषा एक नव स्वरूप रूप से ली कास में लिखा गया। कीर्ण प्रमाण से दूर

रावल्यान में मोहोर का कानन नामक रचना। उड़ी गीतों की प्राप्ति हुई है। राधा रामजीकराव, सुख मोहोर सुख से लोगों की कोई सम्बन्ध नहीं था।

उड़ी गीतों की कुछ साहित्यिक परम्परा-

ऐसी जाति की परम्परा में जो उड़ी गीतों के रूप का प्राचीनत्व रूप उपलब्ध होता है और दक्षिण के रूप में उड़ी गीतों का सामान्य भिन्नता है। परन्तु जो ऐसी की परम्परा के साहित्यिक हिन्दी साहित्य में जो उड़ी गीतों की रचनाएँ मिलती हैं, किन्तु जो भाषा के प्रारम्भिक प्रसार ने उड़ी हिन्दी के कवियों की उड़ी गीतों के विदेशी भाषा समझने की मनीषा ने उड़ी सम्प्रदाय की ही ही रूप उड़ी का आधार नहीं दिया।

उत्तम काव्य १३५० से १५०३ ई० तक की उत्तम कवियों की रचनाएँ। गानियाँ। में उड़ी गीतों का प्रारम्भ हुआ है, पर जो लोगों की समझ में या फलकड़ी भाषा नाम की जिन्हें और योगियों की उड़ी पंक्ति लिखी की परम्परा में जाती है किमें उड़ी, कवियों, उड़ी, पंक्ति जाति भाषाओं का सम्बन्ध हुआ है।

भाषाएँ रावल्यान सुख ने उनकी रचनाएँ से उपलब्ध मिले हैं :-

‘‘ कव कव जो मनु की है परीया बापा बाबा न बापा न बाबा ।

कव उदार है का समझा नहीं क्या नहीं नाहि पितृपा । ’’

नामक

उड़ी परम्परा में उदार, स्वाध, कव्या, कव्या, पीया जाति उड़ी

बसत बसत वाता वापसी में लड़ा था । १

क. ५६२३ से १८२३ ई० तक बड़ेसे हिन्दी का काल क. १८२३ से १८६२ ई० तक परिवर्तन का समय माना जाता है। इसमें दो क्रम-भाषा का ही प्राधान्य रहा है। क. १८०० ई० से उपरान्त क्रम-भाषा कवियों ने देखा है

इस रचनाई इसमें की कि पर हिन्दी की वाप प्रकृतियां परिवर्तित होती है। फे बनी-व्यासिक उपा-व्यास हरिद्वीय ने सीतल की हिन्दी में लड़ी नीती की नीति डाली जाता प्रका कवि माना है। लकी वरु वीर प्रभासपूर्ण कविता के कि मिश्र-वृत्तों बनी - विनीत में उस प्रकार लिता है :-

जी लीन लड़ी नीती पर यह नीति जारीपित करती है कि लड़ी नीती में कविता की ही नहीं लकी उनको सीतल की रना कैतकर अपना पुराण्ड कपसमीय लीव पैना वाधिर। लका समय श्री कृष्ण संकर सुक्त में ई० १७७५ के लाल माना है।

पुस्तक-

विष्णु बहादुर सुय है,

सुय संयुक्त रूप लूप है।।

विष्णु बहादुर रनात है।

लीर विष्णु का काल है।। ४

रिक्तिकाल में क्रम-भाषा का साम्राज्य रहा। किन्तु फिर बहुत है

१- क्रम-भाषा - लड़ीनीती हिन्दी साहित्य का लिक्षात पू० १००

२- हरिद्वीय - हिन्दी भाषा वीर साहित्य का विकास - १९६७ वि० पू० ४३७

३- मिश्र-वृत्त विनीत भाग २ ई० १७७० पू० ६३४

४- पण्डित कृष्णलाल सुक्त - वाङ्मयिक हिन्दी साहित्य का लिक्षात पू० ६५-६६

कवियों ने सड़ी नीली में रक्तार की है। रीतिगत में सड़ी नीली में ही रक्ता करी
वाले कवियों में मुन्नन, वाक्सास, वृन्ध आदि कवियों के नाम छिने या छपी हैं। इनकी
कविताओं के उदाहरण इस प्रकार हैं :-

मुन्नन-

मुन्नन भक्त लाली वास में जिहारी की प्रयाप रवि की
ज्यारी गढ़ का है। " १

वाक्सास- तुम मनमान इस वाक्क मरुत नर,

तुम पुषि रानी इस वाक्क तुम्हारे हैं। " २

वृन्ध- मैं क्यारी वक्क ही लीन नही विवाह ।

वाक्का वास जित्ततिहि अन्त पिपी न वास ॥ " ३

“ ललित मिहारी ” १६ की छत्ती के उपरांत में वृन्ध जिहारी कवितारें
सड़ी नीली की हैं :-

“ कोल में लल रमती है, दिल भरती है क्यारात है।

मानुष नम न पाती है, को मरुत नीर बुझाता है।

वाक्क गरीब करके मन मन वाहें भसा वाता है।

ललित मिहारी कश्क रेन दिन में लल लल दिहाता है। " ४

तन्त्रार वाधुनिक मुा वादना ही जाता है। वाधुनिक सड़ी नीली
के पूर्ण विकास का मास है। उदात्त विनय ' सड़ी नीली के साहित्य ' वासे अध्याय के

१- प्रारम्भिक - सड़ी नीली हिन्दी साहित्य का विकास पृ० १४३ पर

२- " " " "

३- " " " "

४- न्यायालय नाम १ खंडा १ नवम्बर १९९० पृ० २९

बन्धनत किया गया है अतः इसका निष्कर्ष यहाँ आवश्यक नहीं।

जीक रत्नाची में सही नीली-

डा० शिथिकण्ड भिन्न ने लिखा है :-

परम्परा भिन्न रत्नाची की दृष्टि में सही नीली वस्तुस्थिति की पश्चिम काव्य भविष्य में इसका प्रसिद्ध नियमित भिन्निकृत या परम्परा कथाधारण की यह भिन्न भाषा की ओर इसके लौकिक भाव इसी के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। राव भाषा या काव्य भाषा का सम्मान उसे भी ही न मिल सका परम्परा का आधारण ने ही लौकिकता का नीरव प्रकृत पक्ष से देखा था। आधारण काता सुत सुत, विषय, पराक्रम और पुण्य भिन्न की कथा ली भाषा में गाया जाती थी। विशेष रूप से इस उत्कृष्ट और लघु में गाये जाने वाले ग्राम नीली के कथाकाव्य सही नीली के नम नम में। भिन्न, स्वाम, ज्ञान, नोटकी, ल्यास, छापीं फल तथा लंड बापि का भी प्रचुर प्रयोग था। परम्परा उनके रचयिता कई शिथिकण्ड अभिन्न होने के कारण से रत्नाची उपस्थित रही। परिणाम स्वरूप ज रत्नाची की कोई प्राचीन प्रासादिक रत्ना उपलब्ध नहीं की सही है।

रत्ना रूप से सम्पूर्ण का साहित्य की पार भाषा में बाँटा जा

उत्ता है :-

- १- सही नीली- के ग्राम नीत की बहुत दिखती के नवीन की कथा लघु नायि जाती हैं।
- २- छापीं या मरुठी - ल्यास तथा बक्तिन के नवीनीत और नारुपावी बापि विना /

१- डा० शिथिकण्ड भिन्न - सही नीली का बान्दीका पृ० ११६

बल, मकाराण्ड और गुबराण एक प्रकार का।

१- त्याग गीतों और मात जी सही गीतों प्रसिद्ध के वसतिरिक्त दूर दूर तक प्रसिद्ध थे।

४- झुंझारी चर्चित, दुमरी, सैन्टा गवक बादि जली गीत जी पिताका का एक पीकर फली फुली रहे। उनके वसतिरिक्त कई प्रकारों के द्वारा रचित का वाचित्व भी लोक वाचित्व की गणना में जाता है। कभी रत्ना कुबारी और प्रकारों में छापी, गवक, लीली, दादरी, दुमरी, क्वरी बादि विविध लोक प्रसिद्ध गीतों में अपना मन्त्राण फाट किया। इनमें लोक गीतों का परिमाण मात्र ही है वह सरसता एवं स्वाभाविकता नहीं

ग्राम गीत-

सही गीतों के लीकरीतों का अभी अनुचित लक्ष्य नहीं हो पाया है। मकाराण्ड राहुत ने 'बादि चिन्दी की क्वाकियाँ और गीतों' । राहुत पुस्तक प्रतिष्ठान पटना। हीनक वे लोक प्रसिद्ध क्वाकियाँ और गीतों का एक लक्ष्य प्रकाशित कराया है। किन्हीं पुस्त ५६ क्वाकियाँ और ७२ गीत दिये हुए हैं। लोक में अभी प्रकार के गीत प्रसिद्ध होते हैं वेही उत्पन्न के गीत क्वाकियों के गीत, इन गीत बादि ।

उत्पन्न के गीत-

मेरा के बीच क लिया है, बीरा ने

उपका है मात ।

मेरा बाये न उपका है मात । कुकिया --

बीरा मात परा मेरे मातक डक फिर देवर बैठ ।

धर पर्वों की छीना भावनें धर मरुई की छीना बीर । * ४ १

एक प्रजापति की पुष्टि में लोक प्रसार के गीतों के तथा लोक कथाओं के उदाहरण दिए जा चुके हैं परन्तु वास्तव में प्राप्त होने के कारण उनका यह प्रसार करता स्थान एवं विषय विस्तार के मार का क्या करता होगा।

लोक वास्तव की यह परम्परा का भी पैदा, दुर्लभकर, जानता, चायस वापि स्थानों में अनाधिक एवं में विमान है। काली रत्नापति में उन्ही पुरानी कथाओं 'अरुति राठौर' 'पयाराम कुमर' 'सत्य हरिचन्द' 'माता प्रसन्न' 'मन्या पति' वापि पर लड़ी नीली में रही जाती है जो इस भाषा और परम्परा का भरण बिताती है जिनका प्रसार मिली कथाओं में रहा है :-

डा० कपिलेश सिंह ने लिखा है :-

'चायस वापि बिस्ती लास व में नयाराम काल का' 'अन्यपति' 'संगीत भिन्न' 'लासा गोविंदराम का' 'संगीत मन केत' 'वीरों के पंक्ति मातापीन' 'वापि का' 'संगीत प्रसन्न' 'पुढाभा पति' 'संगीत हरिचन्द तथा लक्ष्मणस पुढ - 'गोपी चंद मरुई' वापि रत्नापि मिली है। काली है इस उदाहरण का पुष्टि यह कहा दिया जाते हैं :-

जो इस छिती विधि को बलि मई, भीतज्या मज्जा है।

तहाँ पुढ है मांज का निम्नत नस्त मन प्राण है।

००

००

००

कल लल न बलि पीर न लल लल वाप पुढ है नीलिवी ।

१- डा० सिद्धिन्त सिंह - लड़ी नीली नीली का वास्तविक पु० ११६

२- 'मुरा' प्रसन्न के लोक गीत- सम्पन्न पत्रिका लोक संस्कृति सं० २१० पु० १८१

पक्षितों उन्हें बल मिला पीछे से बपती लीकिया । १

जैसे अतिरिक्त सामान के ही फं पराम, हिराम बापेसाह,
जिन्हीं सिन्धीवाटपाता, तब काश्मिरि आखी फरुखावादी ने भी रखाय
की। डा० कैदरी नारायण हुसैन ने भी अपनी पुस्तक बाहुनिक काय्यबारा में बाह्य
मुा के हल छापीं बातों के उदाहरण दिये हैं। १६ वीं छापीं में छापीं का प्रार
प्रार का क्योंकि छापीं की स्थापना की प्रतिपत्तिता है ली लती थी। काय
की काय लीक नीती की कायिक विषयों पर रखाय ली नीती में ही ली थी
जिसे उदाहरण लीनी काय बापेसाह ने ली 'बाहुनिक सिन्धी बापेसाह' में दिये हैं।

जैसे अतिरिक्त बापेसाहियों एवं छापीं ने भी ली काय की नीती में ली नीती का उपयोग किया।

डा० कपिल देव सिंह के अनुसार काय काय काय है :-

लुह बापेसाहियों ने लुह का प्रार ली नीती में ली जाने वाले
कायिक काय एवं लुहों ने लुह का बापेसाह के फोरलाय ली जाने वाले काय, [^]
काय, छापीं स्थापना लुह काय नीती ने परीत लुह से काय काय के लुह ली नीती
के मार्ग की प्रारत कर दिया लुह रखाय ली नीतीका है प्रीत लुह ली नीती
का कायल लुह काय में लुह कर लुह है। परन्तु लुह लुह ने लुह बापेसाह की नीती
का काय प्रीत किया। लुह लुह नीती का प्रारत लुह पर लुह के कारण बापेसाह
नी लुह प्रीत लुह नीती न लुह लुह। लुह बापेसाह ने लुह नीती की नीती की लुह

१- लुह डा० कपिल देव सिंह - प्रारत लुह नीती लुह ५१५ ५५

जना दिया जिस विरोधी सुकान दिया न सका। उस सम्पन्न में भी कुष्माण्ड गौड़ ने लिखा है :- "राजवारी, नाटकी, बौनीडा, लक्ष्मी वादि नामों से उड़ी गौड़ी का गढ़ बूढ़ करने में उड़ी सहायता मिली। क्योंकि जलें मजबूत बहाते हैं उड़ी गौड़ी की ओर जोड़ी कि धारा प्रसार निष्कल होगया। जल; लक्ष्मी कुधार उड़ी गौड़ी की लक्ष्मी रत्नावली में उसे सहायता करने में पूरी पूरी सहायता की।

जल; निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि उड़ी गौड़ी दिल्ली गैर की जहाजधारण को गौड़ी या किष्का विष्का लोहनी कपूर से हुआ उसके बीच गुण के कारण ही उसे उड़ी गौड़ी नाम से अभिहित किया गया जो एक गुण परक किष्का है। किष्का प्राचीन रूप हिन्दी साहित्य के वादि साहित्य में ही मिली जाता है और जो अपने विविध नामों से विविध रूपों में प्रतिष्ठित हुए। वाच को भारत की राष्ट्रभाषा होने का गरव मिला हुआ। उड़ी गौड़ साहित्यिक परम्परा को बहुत प्राचीन समय से अभिहित नति से बनी जा रही है और वाच भी अपने पूर्ण रूप में अभिहित हो रही है।

-----:0:-----

१- कुष्माण्ड गौड़ - वाचनिक उड़ी गौड़ी कविता की प्रगति पृ० ६

सुदीप सम्पादक

कर्मवीर सम्पादक

प्रभाषा की ओर

प्रभाषा का विकास होता कि पक्षी कल वा कुल है और ऐसी वस्तु है जो है जो और ऐसी प्राकृत की विकसित परम्परा में जाती है। और ऐसी वस्तु का सम्बन्ध और ऐसी प्राकृत है। कार्य संस्कृति के केन्द्र मध्य क्षेत्र की भाषा होने के कारण संस्कृत का रूप पर निरन्तर प्रभाव पड़ता रहा। इसको प्रमुख विशेषताएं भाषा विज्ञानियों के अनुसार ये हैं :-

(१) स्वर मध्य "य" "व" यहाँ सुरासिद्ध हैं। यहाँ वाग्यो वाग्यः कश्चि कश्चि, कश्चि कश्चि कश्चि, कश्चि कश्चि कश्चि, कश्चि कश्चि कश्चि, कश्चि कश्चि कश्चि, कश्चि कश्चि कश्चि।

(२) संयुक्त व्यंजनों में है एक का लोप कर पूर्वोक्त स्वर की दोहराने की प्रवृत्ति इसमें अधिक नहीं मिलती। विविधि के रूप यहाँ संस्कृत के समान ही हैं। महाराष्ट्री एवं वैयाकवी के संस्कृत रूपों "रज्य" प्रत्यय नहीं लाता यहाँ वह महाराष्ट्री एवं वैयाकवी "वैज्य" वरति

प्रत्यय- "य" है व यहाँ पुष्पी पुष्पी। महाराष्ट्री प्राकृत और ऐसी प्राकृत का विकसित रूप है। महाराष्ट्र की स्थानीय भाषा है प्रभावित होने के अनुसार यहाँ उक्त स्वरों रूप है विविधि हुआ और फिर साहित्यिक भाषा के रूप में यह उक्त भारत में उभासत हुई।

और ऐसी प्राकृत की विशेषताओं की वजह से और ऐसी वस्तु वस्तु मानर वस्तु वस्तु उक्त भारत में साहित्यिक भाषा स्वीकृत हुई। और ऐसी वस्तु का स्वरूप एवं साहित्यिक रूपों में उपलब्ध होता है। मध्यवर्ती भारतीय कार्य भाषाओं के प्रथम एवं द्वितीय युग के परिवर्तनों के वितरित और ऐसी वस्तु में निम्न-लिखित परिवर्तन हुए :-

(१) फलान्- (वा) (र) (वी) व, उ, उ यहाँ माता माता

(द्वितीय फल में) पाठ (कलत्रं) कन्धी (ही० प्रा०) काहु
(ही० कप०)

- २- स्वर नञ्जल क्त्वा पदान्त 'म' 'व' के क्या कत्त
कत्त, गन्त गन्त वादि ।
- ३- कलत्रं में धातुनाधिक संयुक्त व्यंजन से अनुनासिक स्वर की धातुनाधिक
स्वनि की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।
- ४- स्वर संकीर्ण अधिक नियमित ही क्या क्त्वा-
छीक छीरण, छीख छीरं, स्वयं छई,
कवरयम् कवरयं ।
- ५- कलत्रं एक वादि वादि सभी प्रातिपदिक स्वरान्त का कर। क्या-
राभाणी रावानः, वणज प्राणज वाक्मन ।
- ६- प्रातिपदिकों में समता होने का प्रभाव लिंग विधान पर भी पड़ा।
नपुंसक लिंग सुप्त ही गया। ई कारान्त कर्त्त उ कारान्त पुल्लिङ्ग
स्वं स्त्रीलिङ्ग दुर्गा के बीच कर्त्त में समानता का पाने से लिंग भेद
विनष्ट होने लगा क्या पदान्त वा के प्रत्य ही जाने से सब स्त्रीलिङ्ग
वाकारान्त उच्च पुल्लिङ्ग वाकारान्त का कर। इस प्रकार पुल्लिङ्ग
का वाक्मन ही गया।
- ७- कारक चिन्ह केर, केर, केरा वाक्मरण में 'मांक' 'उपारि'
वादि कर्ण में ही, छी, छी, छहुं, सम्प्रदान में कीई इत्यादि
कृत्वा का प्रयोग बहुलता से होने लगा।
- ८- क्ताकारक एक वचन में 'उ' विभक्ति प्रत्यय से 'ही' का व्यवहार
हुआ। क्या-
वाग्मिणी, पश्चिमाणी क्यादान कारक में 'हुं' क्या है। क्या-
रुच्छं, रुच्छी, सम्प्रदान कारक में है, ही, हु क्या कहीं
कहीं लय का प्रयोग हुआ। वाक्मरण में एक वचन में 'हिं' सम्प्रदान
स्वं सम्प्रदान कारक बहुवचन में चं, हुं, है क्या रुच्छं, रुच्छं,

प्रयोग मिलती हैं। परिचयी कच्छट की विधिमतारं सन्निहाराक, पुराण प्रमथ
कंठ, रणमतस हन्ध बाधि में पाई जाती है।

"कच्छट" का परचयी कच्छट के वर्ग में प्रयोग-

कच्छट शब्द का प्रस्ता प्रयोग ज्योतिषिधर ठाकुर के वर्णरत्नाकर
(१३२५ ई०) में मिलता है। राक्षसा में वर्णित माट द्वारा ३: मायावी में है
एक कच्छट भी है "पुन कच्छट" माट संस्कृत, पराकृत, कच्छट पेशापी, ठीरिनी,
मागपी, यह मायाक तत्पत्र ठाकरी बाधिरी बांठापी। वर्ण। सुदरा प्रयोग
प्राकृत पेशम् के टीकाकार पंडोकर ने किया है -

" फलं भास तरंडी । ठाकरी धी फिंती कच्छ । (१ माया ।

टीका- प्रयोग माया तरंडः प्रम बाधः माया कच्छट माया कच्छ माया
कच्छ प्रयोग रचितः बा कच्छट माया तत्पत्र हत्यर्ष । "

तीसरा प्रयोग विनापति की कीर्तिता में हुआ है। कच्छ माया
के बारे में यदि विचार करता हुआ करता है :-

" सकल माणी सुकल भास । पारंख रस की मन्ध न भास ।

पेशत कच्छा कच्छ का मिट्टा तं तिन बन्धी कच्छट ॥ " १

चौथा प्रयोग सन्निहाराक के रचयिता कच्छुस रत्नाकर ने किया है :-

" कच्छटस सकल पाक्यंमि पेशाक्यंमि मायाए

तत्पत्राक्यमाहणी सुकलं मुक्तिं वेति ॥ " ४

कतः यह स्पष्ट है कि "कच्छट" का प्रयोग पूर्वी तथा परिचयी

१- राक्षस्य सुकल - सुकलित की मुक्ति

२- प्राकृत पेशम् पृ० ३

३- कीर्तिता १। १६-२२

४- सन्निहाराक पृ० ६

दोनों भाग के कवियों ने किया है और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तर भारत में यह काव्य भाषा भी जिसका वाक्य विन्य विन्य प्रयोगों के कवियों ने किया है। यदि हम कई तो यह समझें हैं कि संक्रान्ति काल में भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं था। एक और साहित्य की भाषा कर्त्तव्य भी और दूसरी और तीसरी भाषा का भी प्राप्ति का पता था। कालः उन कवियों के निम्न है जिसका प्रकार का कर्त्तव्यभाषा का भाषाओं का साहित्य तैयार हो रहा था। इस कर्त्तव्यभाषा भाषा की कर्त्तव्य नाम दिया गया। वास्तव में यह कर्त्तव्य कर्त्तव्य और तीसरी भाषाओं के बीच बहुत-सा था। इस कर्त्तव्य में तीसरी भाषाओं के बीच निहित है। जो किमप्रदाय सिंह ने किया है - " हमारे विचार है कर्त्तव्य परवर्ती कर्त्तव्य का यह रूप है जिसके मूल में परिनिष्ठित कर्त्तव्य यानी तीसरी है। व्यापक प्रकार के कारण इसके कई रूप विस्तार पाते हैं।

कतः यह स्पष्ट है कि परवर्ती कर्त्तव्य की ही " कर्त्तव्य " संज्ञा की गई जिसमें पूर्ण कर्त्तव्य की रचनाएँ कीर्तिता, वर्णरत्नाकर, प्राप्तिफल के पूर्ण प्रभाव के संज्ञ, उक्ति व्यक्ति प्रकरण के पूर्ण प्रयोग आदि गृहीत हो जाती हैं। विधापति की कीर्तिता व की भी कुछ विधान कर्त्तव्य की रचना मानते हैं।

परवर्ती कर्त्तव्य में गुरु काव्य संग्रह की रचनाएँ प्राप्ति फल, सन्देशरासक, रणमत्स हन्त आदि प्रकाशित रचनाओं की सम्मिलित किया जा सकता है। अवधिर्ता की भाषा भी कर्त्तव्य है।

इन पुस्तकों के आधार पर परवर्ती कर्त्तव्य (कर्त्तव्य) की निम्न-लिखित विशेषताएँ हैं जो वाचनिक कर्त्तव्य आदि कवियों ने गृहीत की हैं। परवर्ती कर्त्तव्य के वाक्य विन्यास की कसी विशेषता है जिससे वाचनिक भाषाओं के प्रारम्भिक रूप का पता चलता है।

परवर्ती काल की परवर्ती कर्त्तव्य ने परम्परा प्राप्त हन्त हन्त की मुक्ति कुछ तथा उच्चारण योग्य काल के लिए वे उपाय प्रयुक्त किए-

अनि सम्बन्धी विशेषताएँ-

डा० लीटरी ने कर्त्तव्य की कई प्रथम विशेषता पूर्वोक्त पर

स्वरापात माना है। प्राकृत के संयुक्त व्यंजनों की उच्चारण की दृष्टि से चौड़ा सव्य कानि के लिए चटा दिया जाता है और उनके स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग होता है।

- (१) सरलीकरण के लिए कभी पाठिपूरक दीर्घीकरण है -
 ऊचास (सं० रा० ६०, क उच्चास - उच्चास)
 नास (सं० व्यक्ति २३१८ मिस सं० निम)
 हीस (सं० व्यक्ति ५०/१० फिट) उच्च
 उच्च (सं० व्यक्ति ५०/१० उच्च - सं०- उच्च)
 बीचाम (प्रा० पं० १०३१६ विनाम)
 बसाणिक (सं० रा० ६५ स (बसना - व्याख्यान)
 वास (सं० रा० १०५ - वास)
 बसास (प्रा० पं० २६६१९ बसास बसासिः)
 यही सरलीकरण की प्रवृत्ति प्रमाणित वादि वापुनिक वायं भाषावादी

के अनुसार ।

- (२) मन्त्र " क " " न " " व " " व " " त " " द " " प " " व " " वादि
 व्यंजनों के तीसरे स्ति है प्रायः रकाथ स्वर ताप वाप उच्चम विवृति
 के स्थान पर प्रयुक्त समीकरण का प्रयोग -
 वचार वचावार (वचार)
 पुन्वार (पुन्वार) पुन्वारवार (पुन्वारवार)
 वंवार (वंवार) वंवार (वंवार)
 मीर मजर (मजर)
 बीचधि (बीचधि) विवृति पुन्य सं० रा० ६८ स
 ताप , तापु (प्रा० पं० २०१६ वस - तप्य)

१- टैलीटरी - इंडियन टैलीटरी १६९४ बी० डब्ल्यू० वार०

कारण धातुनाशिता- धातुनिक भाषाओं में पिताई की जाती कारण धातुनाशिता की प्रवृत्ति का कारण व्यञ्ज्य में ही ही गया था-

उपहार (की० ११२६ उत्प्रास) हुंकार हुंकार (की० २१२४ पूर) उपसि (की० ३१२४ उत्प्रास) बांधू (प्रा० की० ४२३१३ बत्पति) नीकाई (उक्ति व्यक्ति ४६, ६ फीट) कारण धातुनाशिता के बारे में इस प्रकार का विचार है कि यह प्रवृत्ति दीर्घ स्वर के बाद र व्यंजन क्सा बन्ध वर्ण या मत्प्राण दीर्घ व्यंजन के बाद पर होती है।

संयुक्त स्वर-

प्राप्त के संयुक्त स्वरों का परस्पर सम्बन्ध में संयुक्त स्वर ही जाता है-

१-

१- मुनी (की० ११५० मुनक मुनति) के (की० ३१८६ क- मुत्ता) नीति (की० २१२६२ नीति मुति उक्ति व्यक्ति २०१ = पूर) नीति (उ० व्यक्ति ५०१२६ उपविष्ट)

नी- नीरा (की० २१२४६ नीरा (बत्पति) नीक (उ० व्यक्ति ४२१४ कउक कउक नीति (उ० ३५१२६ उक्ति)

यन० की० नीति ने जानियारी में बहुत से सौ उदाहरण दिये हैं।

स्वर संयोजन-

क्यार (की० ४१२०१ क्यार । क्यार - वा)

उपास (की० ३१२९४ उपास (उपास वा वा - वा)

नीति (की० २१६८ नीति नीति नीति नीति नीति नीति) नीति

उंठ (की० २१२०५ (उंठ उंठ उंठ उंठ - ऊ)

नीर (की० - २१२ क) नीर नीर - वा + ऊ - नी)

उन्नीय (की० ० १४३ य) उन्नीय (उन्नीय - वा नी - नी)

१- मुतिनि वाय दि ऊन फलित पु० १५६

२- पु० १५६

बागीर (सं० ४२ क) सम्पन्न विष्णु-कृत - जी

नीधिरत (प्रा० पी० ५५५५) कविः चतुर्विंशति कृत- जी

६- दिव्य पाद्युक्त व्यंजन की वाधान करने के लिए एक व्यंजन का यही है किन्तु पूर्व स्वर दीर्घ नहीं होता -

कल- की० २। २०८ व्यंजन - वात्सल्यः

उपे - की० २।५० व्यंज - उपेः

माष्टा- की० २।१०३ (मष्टा - (मत्स्यशटक)

इन विशेषताओं के साथ साथ रूप विचार सम्बन्धी भी विशेषताएँ हैं क्योंकि कष्टतक तक जाते जाते व्यंजन के उच्चारण की रूप रचना के बीच में भी कारकों के निर्माण में स्थिरता जागृत ।

प्रथमा मयूरज वरजतं कृत्त व्रज -- नीरज

द्वितीया नीधिरत नि वाधिव व्रज - गुहाजन

तृतीया वायसन्नि कीलास्त मर - वायस

चतुर्थी कुवलि कडकंठा - कुवलि कु उडकंठा

पञ्चमी सुवराजन्नि मांथ पठिव-

व्यंजन का कल्प स्वर वा, भा, वा- वा- में प्रायः ही जाया है और जी प्रत्येक के बीच से वह व वा ही जाता है यही सुलिया, सुलिया वाधिव के संश्लेष में कष्टतक (परवर्ती व्यंजन) की विशेषताएँ हैं , जी कि व्रज भाषा वादि वाधुनिक भारतीय कार्य भाषाओं ने ग्रहण की है।

व्रजभाषा के पूर्व रूप की परवर्ती व्यंजन में यही वा सकता है। परवर्ती व्यंजन की अधिकतर रचनाएँ एक में हैं। इन रचनाओं में जाने जाने वाली व्रजभाषा वादि भाषाओं का आधार मिली लगता है। पुरातन प्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि , प्राकृतकालम् , उक्ति व्यक्ति प्रकरणम् वादि में बहुत से ऐसे एक बार हैं जिनमें व्रजभाषा के रूप प्रकट होने लगे हैं। प्राकृत कालम् की भाषा की डा० टेलीटरी ने अनु ईश्वरी की वाद्यों उताव्दी के पक्ष को नहीं माना है।

१- डा० टेलीटरी- नीदरलान्ड कीस्टर्न राजस्थानी इण्डियन एन्टिक्वरी १९१४

ई० प्रमिता पु० २३

आ० इतिहास कुमार बाहुज्या का समय सन् १००- ११०० तक माना है।

इस प्रकार इस भाषा का वाक्य-गठन, पर-रचना, व्याकरण तथा शब्द रूप प्रणतिना सीखनी अवश्य है प्रणतिना प्रभावित है।

प्रस्तुत प्रण में कृष्णभाषा की विभक्ति, पर-रत्न, संज्ञाओं, सर्वनाम विशेषण, क्रिया पर तथा अव्यय के विकास में अवश्य का कितना योगदान एवं प्रभाव है। यहाँ सीपारण विज्ञान का प्रभाव दिया गया है।

कारक विभक्ति-

निर्दिष्टितक शब्द मात्र - अवश्य कात से लेकर वाय तक कीक कारकों में पर-रत्न सहित कृष्ण पर-रत्न रहित निर्दिष्टितक शब्द मात्र का प्रयोग होता का हा है। इस प्रकार के प्रयोग कृष्णभाषा वापि में प्रचुरता से मिलती है।

कारक- ठाहुर ठा पर गेल । कीर्ति०

कुम्भा हरि की पासी । पुर०

कीर्ति- तपि पदव्यय सिद्ध लक्षि । के०

सुकुल हूँ कुल इति करी । पुर०

कारण- दीपन कर्मावर गार सातल पोति कर्मा । प्रा० ५०

सिद्धि कुराग वध्य पर ताके । पुर०

व्यय- पुरराय नयर नावर सनि । कीर्ति०

विषय विरह बुर मारी । पुर०

वधिराज- गावि तैत परि । उक्ति०

मधुरा वाजति वाय मधारे । पुर०

वक्रांत में तण, हुत, कैर, मज्जिक के पूर्व कीरे न कीरे वक्रिभक्ति

पद ही रहता है- वी -

मधुरा ही तणीण, तहू के रव, सुवन्ध हीन्तउ, जीवधि, मुन्क,
बादि । उक्०

गावि हुत वाय । उक्ति०

पदार्थ- कर्ताकारक में कर्माभावा में ' व ' का प्रयोग होता है। इसके

प्रयोग विरुद्ध रूप में ' कीर्तिता ' में मिली है- व रूप - वण - वण

वाक्य का रचित वण वक्रिभक्ति वणत- वाने मीति कही ।

कर्माकारक - व कारक विभक्ति के रूप में ' उ ' का प्रयोग कर्ता रूप कारक में होता
है।

वर्न की हु । हुत गाव । उक्ति०

करणकारक- वक्रांत में करण परार्थ ' तहू ' है जिसका उल्लेख ' तह ' है स्पष्ट

है। कर्माभावा का ' वी ' है वही तहू तह है वाया है। उक्ता में

प्रयोग है -

वन- कायार वन राय । कीर्ति०

वन- वी हुत मयी वी कवि वी सुन्ध वन । पुर०

वर्त- हुनी वर्त वन काहु वृष्ट । उक्ति०

वी - वृत्ताध वी वी निहुर मी । पुर०

सम्प्रदान- परस्त्री वस्त्रों में बहुत से नए परस्त्री का प्रयोग हुआ जिसे लागि,
कारण, काय से तीन परस्त्री सम्प्रदान के वर्ष में अधिक प्रयुक्त हुए।

रवि वादि गर लागि । वर्ण

कर लागि रारि करत मन मोहन । पुर०

वीर सुन्दर कहि कारण । कीर्ति

माकल कास वादि करत जी । पुर०

सावि काय वीर । कीर्ति०

रवि पुत्र के काय । पुर०

वसावान- वस्त्रों में वसावान का परस्त्री लंबी, लंबे से जी करणकारक का भी परस्त्री
है। वस्त्रों के पुराने प्रत्यय 'हुन्छ' का रूप 'हुत' मिलता है।

सुन्दर वीर कहि वाणी । केन ४।१०५

सुन्दरी लोटी लायी है। पुर०

सम्प्रदान- वस्त्रों में सम्प्रदानकारक के 'कर' वीर' तथा 'वी' प्रत्ययों का प्रयोग हुआ
है। यह 'कर, कर, कर' वादि से अब माणा के 'का, की, के' वादि
का विकास हुआ है वीर 'तथा' से ल, ली, से वादि रूप हिन्दी भाषा
में आए हैं :-

ल पित करी राय घर तरुणी छट्ट दिवाधि । कीर्ति०

सुन्दर कर, वाणिर् कर कहत निवे । उक्ति०

तारों में वाणी वास्त । पुर० ११।१०

मनु मनु लक्ष लामता की । पुर०

नी तारों का लार वी । प्र०

वधिराज- मुझ पराई वधिराज का एक वक्ता में प्रसूता हुआ है जिसके मांक,
मंकारी, मं, मं, मादि वादि रूपान्तर ही गए ।

सिन्धु मांक । उक्ति०

राधा मन में लई विचारत । पुर०

कीचक- उर में मातल पीर गई । पुर०

मीतार- मिथरि बप्पा बप्पा कुकीवा । प्रा० पं०

मीतार ही मार ही बाधत । पुर० ४३

पर, पं, ऊपर उप्परि

उप्परि फेर मर । प्रा०

बापर दीनानाथ डरे । पुर० किय०

मो प क्त रितान्थी । पुर०

सर्गाव-

सर्गावों की छः विधाओं में विभक्ति किया जाता है- पुरुषवाक्य,
निष्ठावाक्य, निश्चय वाक्य, सम्बन्ध वाक्य, प्रश्नवाक्य एवं वधिराज वाक्य ।

कवचट्ट के सर्गावों की पैली से पाप्मा के परवर्तिता एवं विकर्तिता
रूप का पता चल जाता है। कवचट्ट में लल्ल से सर्गावों का प्रयोग हुआ है जो बहु-
विकर्तिता एवं कूपरिवर्तिता रूप में है।

उज्ज पुरुष ही लई - उज्ज पुरुष कर्माकारक एक वक्ता में यही पराई

वक्ता में प्रसूता होजा है।

उई मिथरि लई किये । पं०

सुखसि कभी ही कहूँ । कीर्ति०

बसि ही तो न कहूँ जल ही । मंज

ही प्रभु का पतिव्रत का नानक । पुर

नहीं वीर में - यह संस्कृत कथा का अन्तर्गत तथा कारण कारण से वक्त का
हम है -

ढोकर भी तुम्हें पारिया । कि०

ही में जीवन मंगल । उक्ति०

जान में नहीं में हम, कभी वीर नहीं का उक्त पुरुष का सन्तान
हीगया ।

मेरा- माफी प्रभु मेरी एक गाव । पुर० ५१

मेरी का अन्त ही एक पावे ।। पुर किये०

हम- ही का कहूँ का अन्त के 'कभी' से विनिश्चित हुआ है वीर की अन्त है
हम का है।

कभी का हम हम हम हुआ है।

कभी जीना हि कहूँ । कि०

हम ही का अन्त के ही की प्रती । पुर०

मी, मोहि - परकी अन्त में से हम पिती है।

परकी पुन रणि गाहि मी। कीर्ति०

कहूँ मी का अन्त कीर । पुर० १०२३

मोहि वसि के का विनिश्चित । उक्ति २१-२२

फुलहि मोहि छाकत गारी । पुर०

मन्त्र प्रहण कर्नाम- उद्यम प्रहण कर्नामों की भाँति मन्त्र प्रहण कर्नाम के
पी रूप होती हैं -

तुम- कर्मों में प्रहण के लिए प्रहण का प्रयोग होता था-

करी फितारणी की प्रहण तारिख । उक्ति०

तुम जानत समझ कैसी है । पुर०

तोहि, लीके त्या - ली प्रहण; संयुक्त कारक "तुम" का प्रान्तर है -

तुम गुण प्रहण । उक्ति०

यही लक्ष- ली ही गया जोर कर्म प्रहण कारकों की विभक्तियाँ
साकर तोहि । उक्ति० ली । प्रहण । प्रहण के रूप प्रहण जाने ली।

तोहि न होखत करवना । कीर्ति

तुही फिर प्रहण नारी जान । पुर०

तु - प्रहण प्रहण तुम, तुम तुम तुम तुम तुम तुम तुम तुम । कीर्ति०

प्रहण तुम फिर फिर प्रहण करि कोन प्रहण । पुर०

तु- तुम प्रहण प्रहण "तुम" के प्रहण है।

तुम प्रहण तुम प्रहण । उक्ति०

प्रहण तुम प्रहण तुम प्रहण । पुर०

तुम जोर में के रूपों में "प्रहण" जोर प्रहण "तुम" अधिक प्रहण रूपों में
प्रहण रूप है प्रहण है, प्रहण के रूपों में अधिक प्रहण प्रहण प्रहण है। प्रहण प्रहण, प्रहण
जोर प्रहण के रूप प्रहण में प्रहण प्रहण के प्रहण, प्रहण प्रहण, प्रहण प्रहण, प्रहण प्रहण,
प्रहण प्रहण प्रहण है। प्रहण प्रहण प्रहण के प्रहण प्रहण के रूप प्रहण- प्रहण- प्रहण,

महू, पञ्जु समान हैं।

कव्य पुरुष उक्ताम- संयुक्त के हैं। । तत् । वाते स्व के कव्योप ही कव्योप में
कव्य पुरुष उक्ताम के लिए प्रयुक्त होती है । परन्तु कव्य
की कव्य तथा लड़ी लड़ी वादि में कव्योप निरवयव वाक्य उक्ताम
यह के स्व कव्य पुरुष उक्ताम के लिए प्रयुक्त हो गई। कव्य
का विकास हुए किन्हीं में 'वी' वीहू' है माना है। वी
की परीक्षर हर फिर लोहक । कीर्ति०
वीहू वाच्य परीक्षर । कीर्ति०

प्रमाणों में कव्य, वे वादि स्व पत्नी हैं- कव्योप में कव्यपुरुष उक्ताम
कव्य एवं की निरवयव है वाच्य- वादिश होती है।

निरवयव निरवयव उक्ताम- के कव्योप में 'स्व' स्व' वाच्य की प्रकार के स्व
मिली हैं -

'स्व' कव्योप की नर । कव्य०

कव्योप नावर मन पीछे । कीर्ति०

इति वादि नर वादि । कव्य०

यह सुनि के पूरे कव्योप । कव्य० १२७५

य वेकता यह पुरुष की है वादिश वादी । कव्य० १२७६

यह है कव्य । कव्य के लिए कव्योप के तीनों किताबों में कव्यः

कव्योप की के स्व कव्य में स्व - कव्य, स्व वादि कव्योप में 'स्व' वादिश होती है।

प्रश्न वाक्य- के लिए कव्योप में 'कव्य' वादि के कव्य की स्व पत्नी हैं। कव्योप है कव्य
माना के कवि वादि स्व निरवयव हुए -

काम्य र हासी । कीर्ति

किन्ति जैन पैस की बासी, तुलत की यहाँ है । पुर०

किं वीर काँटे का बण्ण की तरह भी प्रवीण कपल में होती है।

निय वाक्य सकीर्ण- चिन्ती के निरुपवाक्य सकीर्ण कपल के बण्ण सं० के वाक्य
है वाए हैं -

वापणी वाताप । उक्ति०

वापण पुहु वराप । उक्ति०

वपनी का पितापुत्र कधी । पुर०

वपनी नहिं पयस नन्य नीम । पुर

सम्बन्ध वाक्य सकीर्ण- कपल है ही बले वा रहे हैं -

की गुण नीवक बण्णता । कीर्ति

पुर पण्य की बल की भाव । पुर०

तुम्हारा, हमरा क्य में कपल में तुम्ह क्य हय है उर प्रत्यक्ष होती है, उ का
लीप नीम पर तुम्हारा, हमर क्य गति है।

बनिरुपय वाक्य सकीर्ण- कीरे वीर क्य भी क्य स्थान्तर के साथ कपल के ही हैं :-

कीर नहिं कीर विचार । कीर्ति०

ह कीर क्य में विज्ञा हमारी । पुर०

वान विदु काहु न भाव । कीर्ति०

वकिता गति क्य क्यत न वावे । पुर० विय०

य प्रकार है चिन्ती स्व कपल के सकीर्णों के विषय में स्पष्ट वक्ति

के अनुसार बना दिया है जो प्रत्यय के लिए अपभ्रंश में फट में जोर पड़िते की रूप मिलती हैं। अब मैं इसके लिए कमानुसार पड़ित, पड़िते, पड़ितो कादि ज्ञाते हैं।

पड़िते की, की, कीं ता का। "घूर" द्वितीय के लिए अपभ्रंश में विय रूप से जोर करी "दुग्ध" से पड़िते दूधा, दूधी, दूधे रूप अब मैं मिलती हैं।

तृतीय के लिए अपभ्रंश में "तज्ज्व" जोर "तोज" रूप है-

"तज्ज्व तज्ज्वी भोगि नवि ।" वैया०

चतुर्थ के लिए अपभ्रंश में "कट्ठ" जोर चोत्था की शब्द प्राप्त होती हैं। चोत्था से चिन्धी का चौथा शब्द विकसित हुआ है।

अपभ्रंश	अब माना
कज्जवीय	कज्ज, कज्जीय
पावीय	पावी
कट्ठावीय	कट्ठावी

जो प्रकार अपभ्रंश के अन्य संख्यावाक्य विशेषणों -

अपभ्रंश-	कट्ठीय	कट्ठीय	पणपराणास	सट्ठि	हासट्ठि	पैसवर
अब-	चौथीय	कट्ठीय	फफा	साठ	हासठ	पहार
अपभ्रंश-	जणायक	जणजल्लयक	तथा निय के लिए ।			
अब-	जमानवे	निम्मानवे	जो रूप ज्ञाते हैं।			

"जो" से ऊपर की संख्याएँ अपभ्रंश में उपर लाकर ज्ञाई जाती हैं जो चिन्धी में जो लिख्य से पड़ती हैं । जै-
 कज्जीवर - कज्जीवरी

अप्रातिपदक संज्ञा वाचक विशेषण-

जड़ - जाया

सैकड़ केत के गड़ जोरि बरख करि । पुर०

दिगड़ - डेढ़

कड़ड़ - कड़ु

कन्हूँ कड़ु पर करि कसुवा । पुर०

वायुविशेषक विशेषण-

वायुवि वाचक विशेषण क्व में पुष्पादि लोचक विशेषणों में
गुणा जोड़ कर करते हैं।

दीन- दूना, कङ्गुण - चीना

सुखायवाचक विशेषण में अप्रसन्न में-

दीपणाव अवसर निवर्द्धि । ऐम०

क्व में जी लाकर करते हैं-

पानी , बाठी बादि

क्रिया-

परस्त्री अप्रसन्न की क्रियाओं की पैली से यह बात स्पष्ट हो जाती है
कि वायुनिक वायु भाषाओं का ठाँवा परस्त्री अप्रसन्न की क्रियाओं में विक्रान्त है।
संस्कृत से प्राकृत में जाकर क्रियाओं में दीलाफ बागवा और अप्रसन्न तक बाते बाते क्रिया
स्वी में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। कृष्ण के उतारे क्रिया निर्माण की पद्धति अप्रसन्न
कात में ही प्रारम्भ हो गयी। कृष्ण और सहायक क्रिया के संयोग से मानों की व्यक्त
करी की रीति हिन्दी में जती पिछिल रूप से प्रकट हुई कि उसके कुछ रूप पर सम्पन्न

पीने लाता है परन्तु उसके विकास के बीच परवर्ती व्यक्त में पिता होती है। व्यक्त ने हिन्दी के धातु निर्माण की रचना में पूर्ण उपयोग दिया।

कर्मण काल-

परवर्ती व्यक्त में कर्मण काल में तीन प्रकार के रूपों का प्रयोग लक्षित होता है-

- १- प्राचीन सिद्ध काल
- २- कर्मण काल की कर्मण काल की प्रवर्ती की प्रवर्ती प्रयोग।
- ३- प्रवर्ती के रूप में प्रयोग प्रवर्ती रूप 'व्यक्त' होता है।

प्राचीन सिद्ध के रूप रूप व्यक्त होता है-

‘हिन्दू नीति दुरति प्रवर्ती । कीर्ति०

स्वयं ही काल की प्रवर्ती । प्र०

कर्मण काल में 'त' की 'व्यक्त' की रूप है -

प्रवर्ती प्रवर्ती । कीर्ति०

कीर्ति प्रवर्ती प्रवर्ती । प्र०

प्रवर्ती प्रवर्ती प्रवर्ती । प्र०

प्रवर्ती के रूप रूप रूप में विकसित होता है-

‘कीर्ति प्रवर्ती । कीर्ति०

कीर्ति प्रवर्ती प्रवर्ती । प्र०

तथा प्रवर्ती प्रवर्ती प्रवर्ती के रूप में जाता है-

प्रवर्ती प्रवर्ती प्रवर्ती । कीर्ति०

प्रवर्ती प्रवर्ती प्रवर्ती । प्र०

संस्कृत क्रियाएँ-

संस्कृत क्रिया ज्ञान की प्रवृत्ति अपभ्रंश में पिताई होती है जो वर्तमान कालिक कृन्त, प्रतत्कालिक कृन्त, पूर्वकालिक कृन्त और ३ क्रियाओं संज्ञा के विकारी रूपों की उत्पत्ति से जन्म लेती है।

वर्तमान काल में-

पल्लि रक्ताउ जाह । कर्म०

वधित गति सहु कस्त न बावे । प्र०

वह मगा घट स्मृ । कर्म०

कै जात मंगत उतरा । प्र०

प्रतीकालिक-

पकति वे जी वततान । कालि०

कर्मों जाउ जानि उठि नेठो । प्र०

क्रियाकालिक-

फोपर के भर बागए वह । कालि०

कैरि उठि जाह । प्र०

जो विवेक है वह स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषाओं 'क्रियाओं' से ही प्रजापिता कादि की क्रियाओं का विकास हुआ है।

शान्ति ने हिन्दी भाषाओं की जो सुवी वर्णिकरण तथा व्युत्पत्ति के साथ की है वही हिन्दी भाषाओं में अपभ्रंश के योगदान पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

वर्ण्य-

क्रिया-वर्णिकरण- संस्कृत के तत्काल ही अपभ्रंश के वर्णिकरण हैं, कुछ प्रामाणिक

परिचय के साथ वे कथाकाव्य में प्रयुक्त हुए हैं-

स्थानवाक्य-

कहि । कुत । कब, कहा

कहाँ कहाँ से आए हो । पुर०

कहि । गामिन् । कब, कहा

कहाँ कहीं गीकरी कीन्ही सुनत तेहि तेहि ठार । पुर०

तैं हि जाहूँ कब आए हो । पुर०

गाहिर । कहिः । गाहिर, गाहर

पीछर तैं गाहिर से आगत । पुर०

काल वाक्य-

कसु - - कसु , काय

कासु ही एक एक करि टरि गी । पुर०

काहि कसा काहि , का

का गीहि पीकत काँ न उगारी

बन्धी । कसा । का

का का कीन दुसित गह का का कुसा करी नलीर । पुर०

काय । कसा । को, की

कीलीं सत्य स्वल्प न प्रकत । पुर०

तव्य । कसा । का

तत् हरि तत्त परायी । पुर०
पञ्चर । पञ्चराय । पीर, पीर

रीतिवाक्य-

अ, अ, ए । अम् । यां
अम् अम् यां ही अम् अम् । पुर०
अहि । नास्ति । नाहि, नहि, नही
नाहिने रुहि अम् । पुर०
पावन पतिता नान नहि नैवत । पुर०

नियम-

अम् । अम् । अम्

ह- अपि

अहि, अम् । अम् । अम्, अम्
विला अम् मानह अम् अम् ।
अम् अम् अम् अम् अम् अम् । पुर०

अ- । अम् । अम्

अम् अम् अम् अम् अम् । पुर०

अम् अम्

अम् अम्

अम् अम्

अम् अम्

अम् अम्

अम् अम् अम् अम्

अम् अम्

अम् अम्

वर्णमाला शब्द

वीर

वृक्ष

वीर

वा

वृष्ट

वृक्ष

ठा

ठार

मठ

रु

लक्ष्मण

वृक्ष

वा

वि

वी

जीर्णालि

पर्वत

मण्ड

रा

री

वर्णमाला शब्द

ऊ

वृक्ष

ठा

वा

वृ

वृ

ठा

वा

वा

वृ

लक्ष्मण

वृक्ष

वा

वि

वी

जीर्णालि । जीर्णालि ।

पर्वत

मण्ड, मण्ड, मण्ड

रा

री, री

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

उपनिषत् शुद्ध

11. 11. 11

पिछोष । चियोग । पिछो

1987

45

152

४८

उपरीक्त सीमावर्णन विधिका के आधार पर यह कहा जा सकता है

कि क्या भाषा, क्या भाव, क्या रीति रस्सा पद्धति क्या अन्य रस्सा सभी दृष्टियों से व्यक्ती है ज्ञानाभा प्रभावित हुए। अब का वाक्य कउन बहुत बुर परकी व्यक्ती पर ही निर्भर है। परकी व्यक्ती है ही उतने एक भाषा पर ही साधन ग्रहण किए हैं। व्यक्ती व्यक्ती के साथ अब के व्यक्ती का तुलनात्मक विवेक करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी वह अब ही का सही मौखी व्यक्ती सत्य समुदाय पर ही आधारित थी। व्यक्ती ही भाषा, भाव और अन्यमयी जाती भाषा भी हिन्दी के मण्डार में सुरक्षित है और किसी दिन क्या बालीक विहीण कर रही है।

निष्कर्ष यह है कि यद्यपि जाति व्यवस्था है कि समाज का व्याकरणिक गठन
 देश भाषाओं ने प्रदान किया। उनके व्याकरण के नवीन संस्करणों ने लोक स्वतंत्र राष्ट्रीय
 भाषाओं को जन्म दिया। क्योंकि भाषा विकास की दृष्टि से किसी परकी भाषा
 का विकास जब उसकी मूल भाषा में ही होता है। क्योंकि समाज है ही हमें हिन्दी
 और उसकी नींवों का भाषा एवं लोकोपयोग के विकास को शुरू करना पड़ता है।

सुखी वनस्पति

वर्णन वीर कवी गीत

वफ़ात और सही नीती

भाषा विकास की दृष्टि से वायुनिक भारतीय कार्य भाषाओं की पूर्ण वफ़ात ही ठहरती है। ग्यारहवीं सदी के अन्त तक वफ़ात साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा बन गई थी। वफ़ात के काव्य भाषा के नीचे से ऊपर उठने तथा अन्य भाषाओं के उसका स्थान लेने की प्रक्रिया बारम्बार ही होती थी। वफ़ात अपनी समय से गुबराव से छूट आता तक फैली हुई थी। अतः वायुनिक युग की नींव को भारतीय वाक्यभाषा उसके प्रभाव से सर्वथा अलग न रह सकी। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में कुं की भाषा का नज़्मा हिन्दी के प्रारम्भिक स्वयं के अधिक निष्ठ है। हिन्दी के विकास के तीन युग हैं :-

प्रथम युग का बारम्बार वफ़ात के कव्य भाषा के नीचे से उठ जाने के भाव हुआ, उसके उपरान्त ही भाषा विकसित हुई उसे विद्वानों ने व्यवस्थित रखा था। यह व्यवस्थित कव्य परवर्ती भाषा के तीन प्रादेशिक रूप थे। पश्चिमी-मध्यस्थीय तथा पूर्वी। जहाँ से पश्चिमी वफ़ात से ही सही नीती की उत्पत्ति मानते हैं।

यदि वाच की साहित्यिक सही नीती की कला वाच ही वह वहाँ की कव्यीय स्थानीय भिन्न। फिर, सही वाच की नीती के अति निष्ठ है। यह वाच के वाच पर वह कव्य की जाती है कि सही नीती की पूर्णता की वफ़ात वफ़ात। कुछ प्रतीय वफ़ात रही होगी। उसका कोई लिखित साहित्य है या वह कव्य प्रमाण नहीं मिलता। या तो अपने साहित्यिक रस नहीं हुई या उसका साहित्य नष्ट हो गया। इस भी ही अनुपलब्ध प्रमाण के कारण सही नीती का वाच उभे नहीं मानते

दोसरी वफ़ात के अन्तर्गत कुछ भाषा नव विवेकताएँ रही हैं जो कि

में प्राप्त होता है। विदेशी भाषाओं से जो व्यंजन आए थे वे एक समूह बन गये। अन्त में आधुनिक हिन्दी का जन्म जाता है। यही स्वर ही यही पुरानी हिन्दी के हैं परन्तु व्यंजनों में वृद्धि हो गई है क, ख, ग, घ, ङ के अतिरिक्त बाँ तथा स और ध्वनिगत तत्सम शब्दों में प्रयुक्त होने लगे हैं।

संस्कृत—तत्सम प्रयोग के कारण सही ढंगी में क, ख हो जंका हैं जो केवल संस्कृत तत्सम शब्दों में ही आते हैं परन्तु जितने मात्र में उनके मूल उच्चारण में वहाँ कुछ अन्तर हो गया है 'ख' का उच्चारण प्रायः स हो जाता है क तत्सम शब्दों में रि हो गयी है ङण शब्द का उच्चारण क रिण होता है उही प्रकार पीठक, कुम्भक, कृष्ट आदि शब्द पीठक, भिक्त, कष्ट हो गये हैं। य संस्कृत शब्दों में जो स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलता केवल शब्दों के मध्य में जाता है। हिन्दी में मध्य में जाने वाले 'य' का उच्चारण 'रू' के समान होता है। यथा य वत्, य जन, का कन वास्तव में यन्म, यन्म, कय्यक्य कय्यक्य होती हैं। 'ज' का भी उच्चारण हिन्दी में 'रू' के समान होता है। यथा पण्डित, ठण्डा, तान्त्रिक, मण्डल उच्चारण में पण्डित, ठण्डा, तान्त्रिक तथा मण्डल हो जाती हैं। प्रायः संस्कृत नियमों से काचित् तत्सम हिन्दी में क शब्दों की लिखी भी यही प्रकार है। लिपि में उन अनुनादिकों का स्थान अनुस्वार ने' ने दिया है। और प्रायः क पङ्कज, चम्पक, पण्डित, दन्त सम्बन्ध आदि पङ्क, पङ्क पण्डित, दन्त और चम्पक के रूप में लिखे जाती हैं। तत्सम शब्दों क में 'रा' का फ़ोण हिन्दी में होता है जो गणना बहु गणीत परन्तु सदा सु उच्चारण परिकी प्राप्ती में ही मिलता है।

परिकी अक्षर में क न ङ में व्यक्त नग है। केवल मध्यम न का रा है क्या नम, नाम, नदी= नाह, निव= निव, निर्मि, निमित्त रा है। परन्तु

हिन्दी ने न के रूप की सुरक्षित रखा है। न का प्रयोग पूर्ण व्यंजन में ही होना रह सका है। कीर्तिज्ञा में प्रचुर मात्रा में यह प्रकार का प्रयोग है। निम्न २।२३५। श्रिय ३।६९। में वस्तुतः प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में अर्ध व्यंजन व्यंजन की है। अन्तर अन्तर केवल बताता है कि प्राचीन राजस्थानी में 'धु' अर्ध व्यंजन भी होती थी जो गुवराजी और मारवाड़ी दोनों में सामान्यतः मिलती है। परन्तु पांडु लिपि में यह लिखी नहीं मिली वहाँ नहीं है। फलतः यह व्यंजन का कोई अन्त व्यंजन तत्त्व नहीं था। यह प्राचीन भारतीय धार्मिक भाषाओं से मध्यकालीन भारतीय धार्मिक भाषाओं द्वारा विकसित होकर व्यंजन रूप की प्राप्ति हुआ था। यह अर्ध व्यंजन निरन्तर विकसित होता रहा है। इस पर लोक विद्वानों ने विस्तृत व्याख्या लिखी है। डा० अरुण प्रसाद डा० सुनील कुमार घटगी की व्याख्याएँ वास्तविकतः हैं उन्हीं के आधार पर डा० उमर नारायण शिवारी ने अपनी पुस्तक हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास में हिन्दी अक्षरों के विकास पर प्रकाश डाला है जो भी अनेक अक्षरों हिन्दी में प्रयुक्त हैं वे उही निरन्तर विकास का प्रमाण हैं।

ध० राजन प्रा० राघ रा व इति पूर्ण व दीर्घाकरण से रा व, रा वा हिन्दी राघ ही गया और नहीं राजा हुआ।

ध० चन्द्रक चन्द्रा चन्द्रा हिन्दी में चन्द्रा ही गया।

ध० कृष्टिन् कृष्टिन् कृष्टि कीड़ी।

कहीं कहीं व्यंजनों में परिवर्तन भी हो गया है। जथा

ध० कृष्ण कृष्ण कृष्ण हिन्दी में कृष्ण।

ध० गुरुन न व वः र पर

वस्तु हिन्दी। लड़ी नीली। की अपनी अक्षरों के मूल रूप में मुख्यतः

कर्मों की अभिवृद्धि कर्मों का गर्व है।

स्वात्मिक विकास-

संस्कृत संज्ञा प्रायः तीन वर्गों में विभक्त कर ली है :-

१- वात

२- प्रत्यय तथा

३- कारक विभक्ति

वात और प्रत्यय से मूल रूप बनता है और फिर उसमें कारक वादि विभक्ति लाते हैं। वायुनिक वायं भाषावाची में संस्कृत कारक विभक्ति और प्रत्यय से मूल रूप बनता है और फिर उसी में कारक वादि विभक्ति लाते हैं। वायुनिक भाषावाची में कारक वादि विभक्ति प्राप्त हो गए हैं क्योंकि कारकों की संख्या बड़ी लगी हुई है जो कर्मों में ही विभक्ति में प्रत्येक कारक में विभक्ति उपयोगात्मक रूप नहीं लाते यह एक ही ही विभक्ति विभक्ति प्राप्त भाषा होती है विभक्ति में विभक्ति का विचार संज्ञा धर्मात्मक क्रिया में मुख्यः होता है अतः यहाँ विभक्ति । सही होती । और कर्मों का सुव्यापक रूप लेकर यहाँ में सम्बन्ध की विभक्ति करती।

कारक विभक्ति-

पहली कर्मों की संज्ञा बड़ी विविधता है अतः विविधता प्रयोग। ये प्रयोग सही होती हैं जो प्रकृत से मिली हैं।

कार्य कारक में - एक वक्ता

बाहिर गीत ज्ञान मूल । विभक्ति।

गाय हूँ वाय । उक्ति०

गाय की वायी । तही नीती ।

तही नीती में अने पुष्कल प्रयोग मिली हैं।

मम मैं, परकी, जली, जलनी कल्यादि ।

२- धार्मिक- अर्कत उकार बहुधा मान्य है लारस विभक्ति के रूप में 'उ' का प्रयोग प्रायः केवल कहीं और कहीं के एक कल में होता है। तही नीती में यह प्रकार के उपाकरणों का सर्वथा अभाव है किन्तु इन रूप कहीं कहीं अने प्रचुर प्रयोग मिली हैं।

'उ, धि, धि' विभक्ति के विविध अन्तर प्राप्ति होती हैं। अर्कत में यह कारण और अधिकरण बहुधा की विभक्ति है परन्तु वाणी चकार यह रूप कारकी के लिए प्रयुक्त होती हैं।

यथा- रूप कारक में - उहृदि भिन्न कर ।

उपमान कारक- उरहि कल्यादि ।

अपमान- नायहि उर । उक्ति

अन्वय कारक- राम परहि का मय्य हैत । कीर्ति

अधिकरण- की उतारहि चार

यद्यपि धि, धि विभक्ति का प्रस्ता अन्तर व और र के रूप में मिलता है। यद्यपि दुर्लभा के कारण धि के 'उ' का लोप हो जाना स्वाभाविक प्रचुर है। प्रस्ता अर्कत के अनुसार धि का अवशिष्ट रूप व कहीं कहीं कारण कारक में भी ह्रास विनी एक प्रयुक्त होता रहा है । की -

धिधि उ चरि मारी काहि । कीर

यथा के अन्वय के एते प्रयोगों की भी प्रमाप्ति किया है। केव केवि

का, की के स्थानपर भी व्यंजित में प्राप्त होती हैं।

व्यंजित में वं का की डा० पट्टी ली है, विभक्ति से संबंध
मानती हैं। म्, न् यह विभक्ति कश्चित् परनिष्ठित व्यंजित में नहीं मिलती। परन्तु
पहली व्यंजित में उनके उदाहरण मिल जाते हैं। उनकी व्युत्पत्ति भी विभक्तियों के
संगीत से हुई है। कर्ण कारक बहुवचन की है, मि तथा सम्बन्ध कारक बहुवचन की-
का का नाम । परन्तु व्यंजित में सम्बन्ध कारक की विभक्तियों में पाए जाने वाले
स्व हैं, वे अधिक प्रचलित हैं। व्यंजित की हु, हू, वी वादि विभक्तियां या तो
व्यंजित ही नहीं हैं या सही लीखी वादि भाषाओं के विकारी प्रत्ययों में समाविष्ट
हो गई।

वाचनिक सही लीखी में वह म् विभक्ति का स्व मिली मिली
की के रूप में व्यंजित रह गया। जिसमें सभी कारकों के बहुवचन में परस्पर के पुनः
विकारी रूप निर्मित होते हैं। जैसे- जाती की जाता। जाती ने जाता। जाती से जाता।
जाती के लिए जाता । जाती में जाता। जाती में गिरा ।

वाचनिक सही लीखी में कैर, कर/के, कोर क रूप व्यंजित हैं।
कोर उनके स्थान में का के भी रूप ही रहती हैं। जो व्यंजित के कर, के, क, का वादि के
स्थानपर हैं। व्यंजित में कर्क । रूप मा० १४०५। का रूप ही व्यंजित में प्रयुक्त होता
है उसी का भाग । मन्त्र । रूप है।

भाषा संज्ञा है ली। कीति

भाष, भाष, भाषा म् । कीति ली के चिन्ही स्थानपर म्,
भाष में वादि हैं।

१- डा० पट्टी - वर्ण रत्नाकर कीर्ति प्रकाश पृ० ५१

२- ली

पृ० ४०

सही नीली में यह का ह प्रत्य ही गया और वह तरह की उदात्त स्वर
गया वह सम्प्रसारण। य, या, व मुद्रा में व्यवहृत कर फिर प्रसिद्धी म, व, के साथ संयुक्त ही
गया। यह प्रकार सही नीली में म व प्रयुक्त ही गया।

यस में व्यन्तनिहित हुए। सामान्यनी

सही नीली के ह पर ऊपर व्यन्त के उच्चारण और ऊपर से विवक्षित हैं।

हृन्त उच्चारण का ।

का ऊपर केटा । सही नीली

तथा का पर केटा । सही नीली

सही नीली में व्यन्त के लागि का प्रयोग नहीं हुआ परन्तु उनके ही स्थानपर लिख का
प्रयोग होता है।

यदि वासि नय लागि । यण

जके लिख नय । सही नीली

जके वसिर्वा -

पर्याप्त- इस विधाधारी के कारण वह वाच्यविधाय में व्यन्तस्था वाचा व्यापारिक
या उदात्त उदात्तों के लिए व्यन्तों और पर्याप्तों का प्रयोग व्यन्त में जाता। पर्याप्त
स्व ही दृष्टि से व्यन्त स्व से और किसी का के साथ कारण सम्प्रसारण प्रकट करने के लिए
उदात्त होते से परन्तु विधाधारी प्रत्ययों पर्याप्त भिन्न हैं, क्योंकि स्व स्व में परिवर्तन
होने पर भी उन्हें परिवर्तन नहीं होता व्यन्त के मुख्य पर्याप्त कर का कम्प, उच्चारण,
कैलि, एण, लागि, योन्तक तथा हई हैं। सही नीली में उनके स्थानपर से मिलती हैं।
सही नीली में उनके स्थानपर से मिलती हैं।

१- इसके, में ऊपर, पर, की, का, के तथा लिख

कहाँ काहू में सही नीली में न का प्रयोग होता है। कुछ लोग भी विमर्शित मानते हैं।
किन्तु सही नीली में कलक प्रयोग परलम्पत ही होता है उनके ही धोर एण्ड रूप कीर्ति
लगा में मिली हैं।

कन्ने बापक का रक्षित ।

कन्ने बापक करिख एण्ड हप्प । कीर्ति

किन्ने बापक करिख छु नीला । सही नीली

करण सन समर है

कान्ने एर एन राम । कीर्ति

कन्ने है कगड़ा किया । सही नीली

कम्प्राण- छागि छिर

एहि बाधि नर छागि । उक्ति०

कन्ने छि पत्त नर । सही नीली

कम्प्राण- सही नीली में कलक कम्प्राण का परलम्पत है न ही कम्प्राण के छोर, कान्ने
है कम्प्राण है।

कम्प्राण - कलक का प्रयोग कम्प्राण के परलम्पत के रूप में हीन का व्याकरण हुआ है धोर
कान्ने है सही नीली की का की के का विमर्शित हुआ है।

कान्ने कलक है काहूए मुहू नयन्ति मुजाय । ४१४२२१२५

जिहकी हुंकार है नीर उरते हैं। सही नीली

वधिरण - बाधक मन्त्र - न

कन्ने बापक । उक्ति

कन्ने मन्त्र है । सही नीली

जतः अग्रह से वायुमय सही नीली तक के परतों के विकास पर दृष्टिपात कही से यह स्पष्ट हो जाता है कि सही नीली के अधिकतम परतों के मुताबिक अग्रह में हो रहे। इसके अतिरिक्त हम जानें हैं सही नीली की तीन अवस्थाओं से गुजले पर एक ही परत काफ़ी घिस घिस कर परिवर्तित हो गया है।

क्रिया- सभी वायुमय भारतीय कार्य भाषाओं की भाँति ही सही नीली की क्रियाएँ भी प्रत्यक्ष रूप से हैं। वस्तुतः क्रियाएँ विशेष रूप से हैं। यह स्पष्ट हो ही नहीं सकती कि स्पष्ट क्रिया प्रकृत होती है इसमें अन्य रूप से क्रिया का प्रयोग होता है स्पष्ट होने के नाते चिन्ही की क्रियाएँ विशेषतः अग्रह के माध्यम से प्राप्त हुई हैं। संस्कृत से प्राप्त एक क्रिया की स्थापना में अग्रह काय होता गया। संस्कृत से पायी और पायी से प्राप्त एक क्रियाओं में सही करण की प्रगति जाती गयी। सही नीली में भी क्रियाएँ स्पष्ट हैं।

पाप भाषाओं की छोड़ कर अन्य भाषाओं में संस्कृत के गणों के ज्ञान किो प्रकार का भेदो विभाजन नहीं है। हम ऐसा ही दृष्टि से कोई अग्रह नहीं पकड़ते। प्रायः ये अग्रह अग्रह क्रिया के योग से बनते हैं। सभी सही विशेषता यह है कि चिन्ही की अन्य भाषाओं की भाँति सही नीली में क्रिया के रूपों की अग्रह प्रकृत सही संख्या में विभागीयता हो गई है। अग्रह में सही नीली की क्रियाओं के विभाजन में अग्रह योग दिया है वायु विभाजन में और हम ऐसा हैं।

वायु-

वायु क्रिया के रूप में ही होती हैं जो अग्रह रूपों में पाया जाता है तथा पता, पता है, पता, पता वादि पता में पता ।

शान्ति के अनुसार हिन्दी बाहुरी की संख्या पाँचवीं (500) थी। शान्ति ने जो हिन्दी बाहुरी की कुची कोष्ठिका के साथ दी है उसी हिन्दी बाहुरी में व्यंजन के योगदान का बन्धा प्रत्यक्ष बताया है। शान्ति ने व्यंजन बाहुरी की संख्या 242 दी है।

जहाँ कुछ बाहुरी का उल्लेख है वहाँ व्यंजन ने प्रत्यक्ष रूप में बताया है।

क- सामान्य व्यंज परिवर्तन द्वारा निर्मित बाहु -

क्या हा, हाय, हु , कुहा, लोह, कुट, फड़, फा

ख- विकरण विविध बाहु-

संस्कृत में बाहु गणों में विभाजित थी और उनके रूप परिवर्तन के लिए पुनः पुनः विभाजित थी जिसकी जाँचरूप रूप रखा की जाती थी। व्यंजन ने संस्कृत के विकरण गुण रूप की ही बाहु स्वीकार कर दिए और उड़ी नीची जाय हिन्दी की कोष्ठिका में भी उसे जहाँ का रूप रखा दिया। क्या-

हुं हु-हु, नाच नृत प

हुक हुप प बाधि ।

कारान्तर बाहुरी का रूप हिन्दी में कारान्तर होना क्या उ, क, ख, व कारान्तर बाहुरी में स्वरान्तरान का कलः गुण हो कर ए, ओ, औ, ई गया।

क्या- वेत = वित, गिर, गृ बाधि

ग- गण परिवर्तन से प्रत्यक्ष बाहु - क्या-

री, रोय रुड बाध बाध है छा बाधि

घ- शब्द परिवर्तन से बाधित बाहु- क्या कूट का कूट से कल्पित होता है व्यंजन व और हिन्दी में कल के आधार पर वेत ली है।

उ- कुम्भ त्रुता बाहु - कर्मरुत वीर लड़ी नीली बापि चिन्दी की नीलियाँ न
 लकी संस्था बापि व यथा कुम्भ त्रुता वृ, फेड प्रा पित क प्रविष्ट
 लड़ी नीली न केला ।

न- ली पलायिप बाहु :- उपरान - बाहु कपार, उपरान वीर बाहु के बाग व
 ली वृष्ट बाहुवै। क्या-

वीर, वप पित लता, उत कुम्भ

व- लकी वतिरिक्त कुम्भ ली बाहुवै व ली केला व। क्योंकि उनकी उत्पत्ति केला
 कुम्भान का पित्राय व। कर्मरुत के बाहु पात्वापित न व कुम्भ ली की बापियाँ
 का उनके चिन्दी ली के बाप वली व। वप, ली, वीर, कुम्भ, वककुम्भ
 वकुम्भ, वकुम्भ, वीर, वृष्ट बापि।

काव लता-

चिन्दी के विविध कावों की विचार कर्मरुत के उन विचारकों व

विचारिता व। विचार व कुम्भ -

न- वरुम्भ के वीर लता ली के लता व।

व- कुम्भ ली के लता व।

न- लता लता वीर कुम्भ लता व।

लता लता :- लतापत विचार चिन्दी व व, वी, व, वृ लता - वा, व, वी बापि

वरुम्भ के लता ली के लता व। वीर वीर लता व कर्मरुत

लता वरुम्भ बापि के लता व लता वृता व। लता वरुम्भ

लता वृता व लता वीर लता व-

ना को मेरा कि नही ना को दो ना न होग ।

ना वासि रूप - ना वासि रूपों की आत्मधि में सम्मिलित है। सम्मिलित: समान्य क्रिया
 हीना तथा उसके अन्य रूप के दो और ना दो भिन्न क्रियाओं से उत्पन्न
 हुए हैं और फिर संयुक्त हो गए।

सामान्य कर्मण काल- सम्प्रति में सामान्यता: सामान्य कर्मण के रूप भिन्नस्थिति
 प्रकार के होती हैं।

	सम्प्रति	महत्त्व
सम्यक् पुरुष	कर	कराधि
मध्यम पुरुष	कराधि	कराहि
उच्च पुरुष	कर	कर

सही गौरी में भी उनके स्थानंतर उपलब्ध होती हैं। क्या-

सम्यक् पुरुष	करता । है।	करते । है।
मध्यम पुरुष	करता । है।	करते । है ।
उच्च पुरुष	करता । है।	करते । है ।

सामान्य भविष्य काल-

भविष्य काल के दो प्रकार के रूप मिलती हैं।

क- स प्रकार के होते करण, करिषि, करिषु, करिषु

ख- स प्रकार के होते करिष, करिषि, करिषि, करिषु, करिषु वादि

दोनों ही संस्कृत के रूप वासि रूप से सम्प्रति में वाप हैं। कर्म से स
 वासि रूप साध्याधी में और हैं वासि रूप रूप कर्मों में प्रयुक्त हो गए हैं। परन्तु सही रूप
 गौरी में क्रिया के साथ ना - नी, ने वादि छाने से भविष्य काल के रूप बनती हैं।

वर्तमान वाक्यांश-

वैयर्थ्य में वाक्य के छिद्र व, उ, ए प्रत्ययों का वापस दिया है।
 यह प्रकार सुगिर, विद्यन्तु वीर वर तीन प्रकार के रूप होते हैं। वे वस्तुतः छिद्र प्रत्यय
 के विकार हैं। उनके वृत्तिरिक्ता व वीर वी प्रत्यय वापस रूप भी मिली हैं जो रूप वापस
 में गृहीत हैं। किन्तु सही नीती में कर्म व केवल ।व। वीर ।वी। वापस रूप ही मिली
 हैं। वृ कर, हुन, कती वापस रूप सही नीती में वयप्रसू के अनुकरण पर ही वर्तमान वाक्यांश
 में होते हैं।

कृष्णत उत्पन्न-

वयप्रसू में कृष्ण प्रत्यय वापस रूप का साकार प्रकार वापस है वीर वी
 वर्तमान वाक्य कृष्णत कभी कभी सहायक क्रिया की सहायता से उत्पन्न कती वृत्ति ही सामान्य
 वर्तमान वाक्य का लक्ष्य करती हैं। जैसे-

वीरव करत न वय्य । कर्म ४। ४२२

यह प्रवृत्ति वयप्रसू से सही नीती में वापस है।

प्रत्ययवि कृष्णत-

वयप्रसू में मुताकास में प्रायः निष्ठा के ही रूप प्रत्ययों से तिष्ठन्त नहीं
 वी परम्परा सही नीती वापस में भी निष्ठा पड़ती है।

यस्य सुगिर । कर्म ४। ४२२

उत्ती कतीर कत कती । सही नीती

मविच्छन्न कृष्णत-

वयप्रसू में कती कती वय्य, सहायक प्रत्यय वापस रूप सामान्य मविच्छन्न

कास का काम करते हैं।

मनु करिख उक्ति । श्ल ४। ४३८

कपूर के जल से का प्रसक्त कभी पुरानी बीछियाँ में फितार पड़ता है।

जल मध्य समुत्ति कम्पासि

जल करण उक्ति १९

ये प्रयोग कलामात्र में ही मिल पाते हैं परन्तु सड़ी बीछी में कलाम
उपयोग नपाव है।

प्रकाशित पुस्तक-

शेखर ने कपूर में प्रकाशित के लिए क, रवि, वशि, जय,
सु, रवि, रविण, रविण, जाठ प्रत्ययों का विधान किया है।

जैसे क का ही विशेष पता फितार पड़ता है चिन्ही रूपों में क
प्रत्यय वाले रूपों के वितरित उनके कुछ अन्य विपुल रूपों का भी प्रयोग है।

सड़ी बीछी में अधिकतर व वाले रूप तथा उनके साथ कर व कर
का प्रयोग करके प्रकाशित रूप बनाया जाता है।

संयुक्त कास-

सामान्य कलाम, वपुर्ण मुताकास, वाचन्य पुत कास तथा पुर्ण पुत
कास सहायक क्रियाओं की जोड़ कर बनाए जाते हैं। इनका मूल रूप भी कपूर में प्राप्त
ही जाता है।

संयुक्त क्रिया-

संयुक्त काष्ठ के वितरित वक्रों में संयुक्त क्रिया लगाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। ये क्रियाएँ प्रायः वर्तमानकालिक वृन्त, पुष्पकालिक वृन्त, क्षुण्ण कालिक वृन्त और क्रियाके संज्ञा के पिलारी स्पाई की सहायता से लगाई जाती हैं। जर्म से प्रत्येक का वितरण क्या सम्भव वक्रों से निकर लड़ी नीली का दिया जा सकता है।

वर्तमान कालिक वृन्त निर्मित- पश्चिम वृन्त बाएँ । सेन ४। ४४२

हटाया जाता है । लड़ी नीली - पुष्प कालिक वृन्त

निर्मित पश्चात् वृन्त । सेन ४। ४४२

भागा जाता है । लड़ी नीली

सर्वांग-

लड़ी नीली के सर्वांगों का सम्भव वक्रों सर्वांगों से बाधनी से छाया जा सकता है।

कवच की रत्नाची में यह का प्रयोग हुआ है। उचित व्यक्ति में । जो में नीला भाग २२-६ र का प्रयोग दिखाते जाय में लड़ी "म" लड़ी नीली का वृत्त पुरुष का वक्र का वर्तमान हो गया।

नीर वक्र वाक्यानीक करतु । कीर्ति

मेरा वृत्त में लड़ नहीं । लड़ी नीली

तथा वक्रों में यह है की लड़ी नीली का "च म" लगा है।

मध्यम पुरुष-

तुम अकाल में तुम के लिए तुम्हें का प्रयोग होता था बाद में यही
तुम सही नीती का तुम हो गया।

कही तुम । तुम। प्रा० प० १४५-४

नारी तुम कैसा कहा हो । अनाथनी

सीवर सीवर संकट सीवर । प्रा० १४६ ।२

कह भाषान तरे संकट डरक करे । सही नीती

दुस्वर्ता निरुपय वापक संज्ञाप-

कही नीती में दुस्वर्ता निरुपय तथा अन्य पुरुषों दोनों का मैं पर,
के रूप प्रकटित हैं। यह राज्य की व्युत्पत्ति डा० सही के लिए 'बी' है मानते हैं। 'बी'
कीतिज्ञा में एकाग्रता की नीति प्रकट है।

बी परेश्वर सद्विधि सीवर । कीर्ति०

यह मैं परेश्वर के लिए पर कीर्ति है। सही नीती

निष्ठकर्ता निरुपय संज्ञाप-

यह मैं अनाथनी नाथर नानीसु । कीर्ति

सीवर । बी है सही नीती का यह संज्ञाप निरुपय हुआ है।

का 'महान' का विकास अकाल के रूप में हुआ है।

रूप नाथ । कीर्ति। नाम । सही नीती

निम्न वाक्य-

बप्ता बप्ता । १००

बापनी बाताप । उक्ति ४४-२८

बनी काम । लड़ी नीली

बाप बाप ।

बप्तापिद्वय कि पिनी

बाप बा गद । लड़ी नीली

बप्ता बप्ता एक पड़ी ।

बापनी प्रयोग लड़ी नीली में बापराफ्त किया जाता है और

बप्ता प्रयोग पुनर्वापनी संकेतन के रूप में होता है।

प्रत्येक वाक्य संकेतन के लिए बप्ता में "का है" और बप्ता, दो रूप बतती हैं। किसी लड़ी नीली का प्रत्येक वाक्य संकेतन तीन विकल्पित हुआ है।

सम्बन्ध वाक्य संकेतन में बप्ता है ही यह वा है ही।

बनिरक्त वाक्य संकेतन की वीर हुए भी लड़ी नीली में कुछ बप्तापार के साथ परवर्ती । हो-सीनी । बप्ता के ही हैं।

कीं हुए नहीं जानता । लड़ी नीली

सांकेतिक शिक्षण-

बप्ता में सांकेतिक शिक्षण बप्ता वीर रूप मुख्य है वीर लड़े रूप तथा द्वा बप्ता बप्ता होती हैं। बप्ता है लड़ी नीली के द्वा, द्वा, द्वा, द्वा

वादि रूप मिलती हुई हैं।

संज्ञा वाक्य विशेषण-

हिन्दी पूर्णतः संज्ञा वाक्य सञ्च पाछे ही निर्मित हो गए थे। प्राकृत काल के संज्ञावाक्य रूपों में जहाँ संज्ञा जन्म एवं व्युत्पत्ति स्वरों की प्रमाणता है वहाँ सही नीती ने वादि प्रत्यय वीकरण, लीकरण, स्वर सम्बन्ध वादि नियमों के द्वारा कर्म वचनारण के व्युत्पत्ति बना दिया है।

सही नीती के प्रथम चिह्न वचन में पञ्च, पञ्च वीर पश्चिमी की रूप मिलती हैं।

द्वितीय के चिह्न वचन में पित वीर दुग्ध रूप मिलती हैं। सही नीती में कर्म वचन "पुत्र" सञ्च मिलता है।

सही नीती के तृतीय के चिह्न वचन में "तन्त्र" वीर तीव्र रूप मिलती हैं।

तन्त्र सञ्च नीति नमि । केन०

सही नीती में चार चिह्न तीव्र, तीव्र, प्रत्यय होती हैं। चतुर्थ के चिह्न वचन में च वचन वी वीर्य वी सञ्च प्राप्त होती हैं जिनमें सही नीती के वादि वादि का सम्बन्ध माना जा सकता है। यहाँ हुए वचन एवं सही नीती के संज्ञा वाक्य रूपों की प्रतीति है।

वचन

सही नीती

प व

पञ्च

पित

पित

तन्त्र

तन्त्र

गाय	गो
खारव	खारव
पगव	पगव
कपीव	कपीव
पगाव	पगाव
कपी	कपी
पग	पग
सत, खग, क	सो, से १

सो से ऊपर की संख्याएँ कपट में ऊपर लाकर गायें जाती हैं
जो सही नीची में जो फिल्ल से प्रयुक्त होती हैं।

वपुणादि नीच केका विशेषण-

कप० पाव, पावला - पाव सही नीची

कपाव - कपा १ २

जो प्रकार सही नीचाके वापुदि वापक विशेषण एवं ऊपुवाय
वापक विशेषणों का सम्बन्ध कपट में लाया जा सकता है।

वपुय-

क्रिया विशेषण हुए एक की होड़ कर कपट के अधिकारित विशेषण
सम्बन्ध के कारण से और नीचे से व्याख्यात्मक परिचय के साथ ऊपर से बहुत सही नीची
में बिखरे मिलते हैं। नीचे से ही विभिन्न क्रिया विशेषणों की सूची दी गई है।

१- डा० पीम्प - कम्पारिटिव ग्रामर भाषा वापक केम्पेस वाप लण्डन पाग २ पृ० १ ३४ *

२- कपी पृ० १४४

कावसायक - कण्टु, - काव, स्वर्णि- कण्टा, कावि- का

स्वातन्त्र्यावरण- सुख कथि कथं, कथा

याचिन्ना वाचिं यचं यचां

सारी कही समझीं च

1992 1993 1994

उदित्य उदित्य उदित्य , उदित्य

पाशा पीसै लया जहाँ लखै निखर पटैर

काष्ठ, काष्ठ, पीतल काटि का ती श्री स्व में प्रतीय शीता है।

दोषिणाक- स्व स्व हि । यो ज्ञानाणा

शिवि पाति श्री

अथर्व ऋषिः

म नमि मी

१५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

सादर प्रार्थना- अफ़स़स की समानता से सही नीती के सादर प्रार्थना अफ़स़स सदा सदा

उत्पादन विकसित हुए हैं। विविध-वस्त्रों वस्त्रों से सजी नीली शीट।

कवर से लड़ी गोली ऊपर, तथा कपड़ा लीसि से लड़ी गोली बायें ली
विकसित हुए हैं।

कपड़ों का काल है लहरी लहरी काल का कालापि है।

समुच्चय की एक संख्या- संकलित यह है इसी नीति का सम्बन्ध विकसित हुआ है।

विश्वस्य नोपपन्न वस्तुतः- लड़ी नीली के काले, शायद यदि विश्वस्य नोपपन्न वस्तुतः के लिए
वस्तुतः में काले एवं लाल की रंग मिलती हैं।

तत्कालीनक प्रायय- बहुत बुरा कथन प्राययों का प्रभाव भी सही नीती के ऊपर पड़ा था



जगता है।

१- व स्वार्थ क

लुक् , लृट् लड़ी नीली में होती है।

२- क्य है - चीन्हा, लड़ी नीली चीन्हा ।

३- कार- क्कार, क्कार लड़ी नीली

४- कारि कारि - भिन्नारि भिन्नारि कारि कारि - लड़ी नीली

कीचण, कीच - कीच काण करीबाळ- लड़ी नीली

५- ई ई

कर्मिण , कर्मिण कापि लज लड़ी नीली में मिली है।

उ श्वापि ट ।का

पील का लड़ी नीली में " पील " जगता है।

कन्त कन्त

लड़ी नीली में कन्त गुणकन्त लज प्रकृता होती है।

क्य ।भाषाभाष ।

लड़कन, लड़कन , लड़ी नीली ।

ई ।भाषाभाष। लड़क , लड़क , लड़क कापि लज लड़ी नीली

में मिली है।

जवाब-

वास्तविक लड़ी नीली के जवाब पर लज लज लड़कनी कर्मिण के ही

जवाब है :-

कर्मिण

कर्मिण

लड़ी नीली

कर्मिण

वपः	सहीनी
वपः	वपः वपः
उपपत्ति	उपपत्ति
वपः	वपः
वपः	वपः
वपः	वपः
वपः	वपः
वपः	वपः
वपः	वपः
वपः	वपः

वाक्य विन्यास-

वपः का वाक्य गलत है वास्तविक हिन्दी। सही नीली। का वाक्य गलत प्रयोग प्रभावित है।

कारण । वपः-वपः । वपः वपः ।

वपः- व वपः वपः वपः वपः । वपः

वपः का वपः वपः का वपः । सही नीली

वपः वपः वपः वपः । वपः

वपः वपः वपः वपः । सही नीली

वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः । वपः

वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः । वपः

वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः वपः । वपः

परस्त्री वस्त्रों में लहंगे व अधिक विशेषण उपवास्य की चीज़ों के लिए सम्बन्ध वाक्य संकेतों की तथा उनके अन्य रूपों से भेद देने की अपेक्षा । साधारणतः लहंगे से स्वतन्त्र वाक्यों में लहंगे की प्रगति पिता के पक्षों से।

‘मुझे विरहाग्नि जूनी क दिनगाहव कम्पितम् ।’

यह है प्रकार वाक्य विन्यास के लिए वस्त्रों में विभाजित, प्रत्यय सर्व वाक्य के प्रयोग की विशेषता, जिन्हा सम्बन्धी कुछ विशिष्ट प्रयोग तथा संयुक्त प्रयोगों का प्रयोग वादि सभी प्राप्ता होती है जो लहंगे नीचे में विशेष रूप से विभाजित हुए हैं।

‘गट्टि परि लई गिरा गट्टि पड़ ग । लहंगे नीचे’

वाक्यों की लहंगे परीक्षा कर कर्तव्य का सुन्दर लहंगे है।

पन्थन ‘क’ मुक्त लहंगे पिता । वस्त्रों

पिता वादि प्रयोग लहंगे नीचे में प्रारम्भ प्राप्ता में प्रयुक्त होती है।

हस्तकीर्त-

हिन्दी के हस्तकीर्त की चार भागों में विभाजित कर लहंगे हैं।

लहंगे, लहंगे, लहंगे तथा लहंगे ।

लहंगे-

लहंगे के लहंगे के लहंगे हस्त हिन्दी के लहंगे लहंगे हैं। लहंगे नीचे में लहंगे लहंगे की लहंगे है। परस्त्री वस्त्रों में लहंगे लहंगे वादि लहंगे लहंगे का लहंगे है।

तत्त्व-

दूसरे प्रकार के तत्त्व हल्के हैं जो जल में विलीन हो जाते हैं कि उनका विकास हम निर्धारित करना नहीं कर सकते हैं। अक्सर तत्त्व हल्के हैं जो जल में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार यह उद्घाटन का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अक्सर तत्त्व हल्के हैं जो जल में विलीन हो जाते हैं।

दीर्घ हल्के-

तीसरे प्रकार के दीर्घ हल्के भी अक्सर में मिलते हैं। जो जल में विलीन हो जाते हैं।

जल

दीर्घ

हल्के

दीर्घ

दीर्घ हल्के की भी अक्सर में विलीन हो जाते हैं। जो जल में विलीन हो जाते हैं।

अक्सर हल्के

दीर्घ हल्के के हल्के

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल, जल, जल

जल

जल

वाचनिक लड़ी नीली की प्रवृत्ति सत्तम शब्दों के ग्रहण करने की
 ओर अधिक है। अतः ज्यमि सम्बन्धी परिवर्तन अधिक प्राप्त नहीं होते। पर व्याकरण
 लड़ी तथा सव्य शब्दों पर व्यंजन की शायद स्पष्ट है। फिर शायद की लड़ी नीली के ग्रहण
 किया है वे उसकी प्रथम सीढ़ी पर व्यंजन की है।

वाचनिक हिन्दी लड़ीनीली । की मुख्य प्रवृत्ति वाकारान्त है।
 और यह प्रवृत्ति व्यंजन में प्राप्त है।

स्वरान्त रूपः प्राप्ति पि व्यंजन के अन्त पर व्यंजन में अकारान्त
 और अकारान्त शब्दों के अकारान्त रूप हो जाते हैं। नाहू सव्य या का और बाबा।
 यद्यपि व्यंजन अन्त पर गुरुत्व हो पर उसकी प्रत्यय सीमा में अकारान्त शब्दों की जाभाई
 भी थी और उसके सव्य व्यंजन में प्रवृत्ति हो जाती है-

“ अस्तु भूतं नु मास्ति यदिति म्भारा कस्तु ” में यह प्रवृत्ति
 स्पष्ट दिखाई देती है।

२- वाचनिक हिन्दी में इत्यादि की प्रवृत्ति भी व्यंजन की है। लड़ी
 नीली की क नीलियों में इत्य स्वर और ओकार पाये जाते हैं। वाचार्थ अन्त में
 व्यंजन में प्रवृत्ति होने जाते इत्य स्वर और ओकार का उद्देश्य किया है।

३- यद्यपि कारक रत्ना की दृष्टि है लड़ी नीली विधीनात्मक में है जबकि
 व्यंजन संयोगात्मक में थी। तथापि व्यंजन में विधीनावस्था के एक एक उदाहरण मिल
 जाते हैं। सम्बन्ध के अर्थ में प्रवृत्ति होने जाते हैं तथा सव्य प्रत्यय तथा तत्कार्य के नीला
 शब्दों का प्रयोग यही सुचित कहा है। प्रवृत्ति की अन्त व्यंजन में विधीन विधि का
 है। फिर भी वे प्राप्त विधीन शब्दों लड़ी नीली में विधीन हैं। व्यंजन में विधीन शाय
 की प्रवृत्ति है लड़ी नीली की विधीनावस्था के लिए प्रवृत्ति प्रवृत्ति की है।

४- धर्माय- सही नीती के अधिकांश धर्मग्रन्थों का सम्मान व्यक्त है चाहा बौद्ध या सम्राट् है।

मम - मैं, वही - हम, तुम्हें - तुम, तुम्हें - तुम।

जीव । असः, जीव । जी, का, जी, जी, सु वादि का व्यंजन है
सीधा समान्य है।

जो प्रकार सबी नीती के सम्बन्ध एक हीमान भी ज्ञात, सुझात
करके ज्ञात, ज्ञात ही भी हैं।

गुप्त और प्रजापति समाज-

मया यत्नः कृतः । तत्तु विना

ब्रह्म विद्या । कल्याण योग

५ वाँ प्रश्न सामान्य है।

५- सड़ो नीली के सम्मान्य परतों का विकास कर और तण के विभिन्न करने से हुआ है।

4- उ की प्रकृति का क्या विन्दी है कारणान्त या वाकारान्त करने की प्रकृति
व्यक्त है या नहीं । व्यक्त है तो गीता की ओर प्रवृत्ति दोनों रूप मिलती हैं।

७- सही नीती के अनुसार और शर्तों में सिंहा की व्यवस्था अफ़ग़ानिस्तान के प्रभाव के कारण हो गई। अफ़ग़ानिस्तान में सिंहा व्यवस्था व्यवस्थित थी। उसका कोई अनुशासन नहीं था। वहाँ कुम्ह का कुम्ह, कंग का कंग, कंग का कंग ही राजा का सामान्य था।

कुम्भ में जोर विशेषण विशेष है कि जोर यका की जोर कट्टरता संज्ञा में जोर का
व्यक्ति में नहीं रहा। स्वीति का विशेषण जोर पर भी कुम्भ में कि नहीं है।

प्रजासिद्ध और विवाह विवाह एवं पुरानी और नई विधि में अंतर का

१- कार्यक्षेत्र प्रसारण

प्रभाव है। पुरानी हिन्दी के ठठि, थठि, करि वादि स्पर्श में वपः का 'ह' प्रत्यय स्पष्ट होता पड़ता है जो अब भाषा में पूर्ण रूप से प्रयुक्त है। वपः में प्रस्ताविक क्रिया के लिए प्रयुक्त वाठ क्रियाएँ हैं वे 'ह' और 'उ' की हैं। लड़ी नीली के क्रियाएँ क्रिया चलता, चलता वादि में वपः का क्रियाएँ प्रत्यय 'वण' स्पष्ट है जिससे वपः में चलण, करण, रूप आती है। ण का न और ऊकारान्त प्रयोग करना लड़ी नीली को बर्नी प्रुधि है। कतः चलता वादि रूप रूप आती हैं। वपः का 'करि' ही लड़ी नीली को प्रस्ताविक क्रिया के 'कर बाहर' बाहर वादि का रूप है। जिसे लड़ी नीली प्रुधि के अनुसार करि का कर म्ना लिया है।

६- लड़ी नीली की क्रिया के मूल और वर्तमान स्पर्श में वपः और वपः का प्रयोग होता है। वपः में वर्तमान में वपः और तिह बीनी का प्रयोग था। पर मूल के लिए वपः का ही प्रयोग होता था।

वापुनिक तिह में तिह के जाने की कलानी का सम्बन्ध लड़ी प्रुधि का फल है। वपः के फिज्जल, पिज्जल है लड़ी नीली के बीजिर, बीजिर रूप आते हैं।

पिछली प्राकृत परम्परा की बर्ना वपः का तत्काल लड़ी और वर्तमान प्रयोग की लड़ी अधिक पुनरावृत्ति रहा है। लड़ी प्रुधि लड़ी नीली में बर्ना ली है।

यह प्रकार तुलनात्मक विवेक के आधार पर यह निश्चय है कि कदा या कदा है कि लड़ी नीली का व्याकरण प्रस्ताव वपः व्याकरणों है प्रभावित है।

पेस वजाय

कमलाचा का वापिस

कृष्णाचार्य का साहित्य

कव्य साहित्य-

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ हिन्दी, ब्रजियाँ कव्य ब्रजियाँ की रचनाएँ से होता है। इन काँों की नवीं शताब्दी सातवीं में खिली नई रचनाएँ की न भाषा का नाम की नीलम ली है ही कि अमरुत नाम से प्रसिद्ध छन्दिरिण्य भाषा में ली रखा होती ही थी साथ ही साथ कलाभारण की साक्षात्कीय भीती भी अमरुत छन्दिरिण्य का लक्ष्य करके साहित्यिक रखा के योग्य बनने में लगी हुई थी। यह स्पष्ट है कि उस युग के हिन्दी और ब्रजियाँ की भाषा एक प्रकार से बली थी जिसका प्रकार परिक्रम गुजरात और राजपूताने से छिन्न पुरान में बिहार तक था। कृष्णाचार्य कने लक्ष्य रूप में उस समय तक लानी विकसित नहीं हो लगी थी कि उसमें काव्य रखा की जा सकती। परन्तु यह मानना पड़ता कि कृष्ण प्रीति में पौलिक पर और नील उर्ध्व गार जाती रहे लीं। परन्तु एक ली उनका कीर्त उपाकरण बाध उपलब्ध नहीं है कुधरे उनका स्वल्प भी प्राप्तीय प्रभाव से अज्ञात न रहा किन्तु प्रमाण हिन्दी, ब्रजियाँ और ब्रजभाषा की रचनाएँ में यह लक्ष्य मिलती हैं। ली ली दृष्टि में लक्ष कर बाभाय रामचन्द्र हुसल ने लिखा था :-

‘‘सुर गगनर एक बली जाती हुई परम्परा का गारि पर पौलिक की रही है’’ पुनं विकास का प्रीति होता है बली जाती परम्परा का पुन लक्ष्य नहीं।

बलीर हुसरी की भाषा पर भी कृष्णाचार्य का प्रभाव प्रकट भाषा में है। उनके दोहाँ और काँों की भाषा मिश्रित कृष्ण भाषा है। कापि हुसल की न ली

विशुद्ध क्रमागत व्यापक-प्रवृत्ति काव्य माना जा रहा है।

वीरगाथा काव्य के लिए कवियों की रचनाओं में क्रमागत के अर्थों का प्रारंभ प्रतीत मिलता है। रावणान के चरणीय साहित्यिक चिंतन के नाम से साहित्यिक काव्य रचना भी कही थी। चिंतन की ध्वनि पर उभर प्रतीति तत्कालीन काव्य माना - वास्तविक क्रमागत का चिंतन नामकरण भी रावणान में ही हुआ है।

श्री नारायण टण्डन ने लिखा है :-

अनेक कवियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन साहित्यकारों का परिचय एक विकासोन्मुख माना है। यह माना उनकी दृष्टि में साहित्य के उपयोग नहीं बन पाए थे। तथापि मौखिक नीतियों और सामान्य सुविधाओं की रचना के लिए उनका प्रतीक काव्य चिन्ता माना जा रहा था। सुवर्ण के छंद की वृत्त का प्रभाव की क्रमागत की रचनाओं के कवि भी जाय प्राप्त नहीं है। गीतगाय और विनायक की रचना जाय प्राप्त है। उनमें क्रमागत के भी चार प्रतीक पड़े ही न मिली हैं। परन्तु यह सर्वमान्य है कि इन दोनों की रचना स्थिति भी हमें क्रमागत नहीं है।

डा० बीरेन्द्र कर्मा का मत है कि इन दोनों की १५ वीं छाया की तक कोई रचना उपलब्ध नहीं और न प्राचीन क्रमागत पर प्रभाव डालने वाले स्थिति महत्वपूर्ण लिखा है न सामान्य का मत भी हम तक कहा है।

वास्तव में क्रमागत काव्य का प्रारम्भ छंद, छंदों की सीखों छाया की मानता साहित्य। छंद, छंदों की पद्धतों छाया में कवि का नाम उल्लेख-

१- वास्तविक रावणान्ड कृत स्थिति साहित्य का प्रति छंद पृ० ६६

२- श्री रक्त ० ० ० - २ विस्ती जाय स्थिति विस्ती पृ० १

३- पुर कीर्ति माना - श्री नारायण टण्डन पृ० ४१

४- डा० बीरेन्द्र कर्मा - क्रमागत - पृ० २०

नीच है। पशुपु कभीर की रत्नारं कृपाणा में नहीं लिखी गई हैं। उनके पंजाबी, बन्धी, जीवपुरी, रावस्थानी तथा कम बादि का सम्बन्धित कम है। इसी कारण से विद्वानों ने कभीर की भाषा "सिक्की" "सुनसुकी" भाषा कहा है।

वास्तव में कृपाणा काव्य का प्रारम्भ सन् १५१६ के से मानना चाहिए कम से महाप्रभु बल्लभ ने जीनाय की के मन्दिर में कीर्ण की व्यवस्था की और मायान के विषय के सम्बन्धित नियमित कम से कीर्ण करने वाले गाथाओं की रत्ना। डा० दीन नारायण गुप्ता का भी यही विचार है। उनका कल है कि सन् १५१६ के बाद सूरि : वापित्यार की गोपक में जीनाय की सिद्ध मन्दिर की नीध रखी गई थी। यही तिथि साहित्यिक कृपाणा के सिद्धांश की तिथि भी मानी जा सकती है।

कृपाणा के विकास और उत्कर्ष में बुद्ध भक्ति का बहुत बड़ा हाथ है। भक्ति काव्य में लोक भाषाएँ हुए निम्न प्रभाव बीरे बीरे निम्न समाज से साधारणता का ज्ञान पर जा रहा था। मायान के राम-बुद्ध रूपों के उद्गार भक्ति मार्ग प्रकट हो चला था। मायान के उन दोनों रूपों के में ज्ञान बुद्ध रूप पर अधिक मुख्य हुए। बुद्ध भक्ति की यह धारा भी कृपाणा काव्य के सम्बन्धित थी। अतः भक्ति काव्य में कृपाणा-काव्य के निम्न निम्न विस्तार पाया। अष्टाव्य के कवियों ने कृपाणा काव्य की बूढ़ नीध छाती। कम एक बार यह काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी अतः ज्ञान प्रसार भी भी विस्तृत होता गया। जर्म स्थानीय प्रयोग भी जारी रही। अतः मायाभिरुपाणा की शक्ति भी बढ़ने लगी। अतः सन् १५ वीं शताब्दी के बाद तक कृपाणा में प्रचुर काव्य रत्ना हुए।

मायसुक्ति के नाम ज्ञाना कृपार की और सम्बन्धित हुए। जारी

की सामाजिक तथा धार्मिक दशा बहुत दयनीय थी। एक तरफ से पौराणिक कर्म से उन्हें बहिष्कार एवं छोड़ता जा रही थी। मुसलमानों के पैर में जाने से वास्तविक भाषना और भी खतरा बढ़ती गयी। कुतरी और नंद और नाथ पन्थों उस पौराणिक ढाँचे का अपनी बलवत् शक्ति द्वारा सफल कर रहे थे। इस नवीन विरोधी विचारों के संघर्ष से समस्त हिन्दू समाज के लिए किसी तीखे मज्जा मार्ग की आवश्यकता थी और उसी आवश्यकता ने भक्तिवाद को एक स्फूर्ति एवं शक्ति प्रदान की।

वाचस्पत्यव्यवहारी प्रसाद त्रिवेदी ने अपनी हिन्दी साहित्य में इस संघर्ष में लिखा है :-

“ भक्तिवाद समाज में प्रसक्ति कर्म व्यवस्था और ऊँचनीच की भेदभाव को भी खोखल करती हुई उसकी छोड़ता की सिद्धि करने में समर्थ हुवा। उनके पास अत्यंत शक्ति, ऐश्वर्य और भ्रम के आधार पराक्रम्य भाषान् की शक्ति का संकल था। एक बार भाषान् की शरण गली पर खड़े नीच से नीच व्यक्ति उठायात् उस वाग्वर पार कर जाता है। इस युग के हिन्दू गुरुजनों के लिए एक महत्वपूर्ण निधि थी।

अतः भक्त कवियों के मानकतावादी दृष्टिकोण ने ईश्वरीपायन की उनके तीक्ष्णता और आध्यात्मिक भ्रम वाक्या द्वारा उनके लिए धरत बना दिया। इस ऊँच नीच के भेदभाव को समाप्त करके समाज में एक सुखता लाने के लिए पूर्ण प्रयास किया। इस भक्ति में कृष्ण का को अपनी मातृभाव की उपायन के कारण और भी प्रबल था। इस मधुर उपायनाक की प्रकृति की प्रतिष्ठित करने वाले थे। इस मण्डल के प्रधान वाचार्थ बल्लभ और इस मधुर शीत का केन्द्र बना मधुरा तथा कृन्दायन। अर्थात् की लिंग्य भाषा में आध्यात्मिक-साहित्य का पुनः प्रारम्भ हुआ। गुरुदास तथा अष्टनाथ के कवियों ने श्री-

अतः ही राजाधिराज की पत्नि का वह रूप उठेगा कि फिर वहाँ कुम्भ पत्ति का प्रसार हुआ वहाँ वहाँ उसके सन्तान से पुत्राधिक होकर कुम्भपत्ता काका सन्तान हुआ। न ही पत्ता ही उस काका से वंशित रहा न कौल, पिता ही न नान्यपत्ता।

अब कुम्भ पत्ति की एक विज्ञापन संहिता की एक वारा राजस्थान के राजस्थान में पहुँची तो वहाँ के कुम्भपत्ताक मत्त कविर्षी, भक्तिमती कीरा, कुम्भपत्ता फोरी, नागरीदास, जिस कुम्भपत्ता दास, कुम्भपत्ति दादि ने कुम्भपत्ता में ही एक गार हीर पुंकि श्रीकुम्भपत्ता के मुल के मुल की जाया रही थी अतिस मत्त कविर्षी ने ही केव बाणी से ही मत्त जाया।

हुर जाया से अधिक है, कुम्भपत्ता ही है।

कुम्भपत्ता बाणी स्या, मुल कुम्भपत्ता हरि है। १

अब कविर्षी के अतिरिक्त राजस्थान के विज्ञापनपत्ताक दास पंथ, राजा कीरी पंथ, परमादासी पंथ, निरंकी पंथ के मत्त कविर्षी ने भी अतिरिक्त: अब जाया की ही मत्त प्रदान किया। वहाँ तक की वर मासी भिन्न। कुम्भपत्ता। प्रदान ही मत्त।

उसी अतिरिक्त मत्तपत्ता केम्य गार कुम्भ पत्ति की ऊर कौल में उठी तो अब जाया का प्रदान कौल की माया नर भी मत्त। वहाँ के मत्त कविर्षी ने केव मत्त की सन्तान कुम्भपत्ति के नाम से की। अब कुम्भपत्ता का एक परिवर्तित रूप भी न मानकर वैपत्ति जाया का अन्तर जाया जाय ही भी वैपत्ति कविर्षी कुम्भपत्ता से प्रजापति है। अतः कौल की वर कर मासीपत्ता माय ने कहा मा- वरही है। अतिरिक्त

१- इतिहास - संवत् १२४१ ई० पृ० ११४

२- हा० कपिल देव सिंह - कुम्भपत्ता नाम सही नीती पृ० ७

३- पं० नीतीसाह कौरिया - राजस्थान का भिन्न साहित्य - पृ० १० पर उद्धृत

होता है कि उन कवियों ने इस भाषा में ही कविता करने की चेष्टा की ही तो क्या आवश्यक है।

गुजरात और फौज के भाषा के प्रभाव से नहीं बच पाये थे। गुजराती भक्त नरसी तथा फौज के गुरु नामक देव के यह कवनाभा से प्रभावित थे। गुरुदेव सिंह का तो बहुत अन्य कवनाभा की रसार्थ से पूर्ण है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुज्जीयापना के कारण कवनाभा के व्यापिनी ही नहीं थी। कबी की शौरसी मध्य से देश की व्यापक भाषा ही रही और यह उपराधिकार कवनाभा की मिला।

बुज्जी के बीकन की मिला कवनाभा ने अपनाया उल्ला किवी ने नहीं। डा० रावेन्द्र प्रसाद ने उसी कवि एक छंद में कहे की सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है :-

“ इस भाषा का तो उनकी सीखा है उल्ला साधारण्य ही गया है कि उनकी सीखा है प्रमद भी उल्ला अपना अस्तित्व है यह बात का ज्ञान कुछ ही गिने लोगों की ही होगा। कवनाभा की बात कीविर और गुरन्त लोगों के मन में ‘मेरा मेरा नहीं मास्त छापी’ प्रतिध्वनित होने लगेगा। मैं नहीं जानता किवी अन्य जोड़ी का भी किवी महाविभूति की बीकन सीखा है उल्ला साधारण्य है। मेरी जानकारी में तो यह गौरव इस भाषा की ही प्राप्त है। बुज्जी भक्त कवियों की सीखाएत गान कवनागी में ही करने में समर्पण होता था। उल्ला उनकी डा० मकुहास ने किया है :-

“ समुदय भक्त माध मिला किवी प्रान्त मेर के अपनी वाणी की

१- भारतीय - हिन्दी भाषा - पृ० ७

२- डा० रावेन्द्र प्रसाद - साहित्य, लिता- संस्कृति पृ० ६८

बड़ी जा बोर बन्दी की शिखर मानने के लिए तैयार रहने ली। परिणाम स्वयं
 का में शिक्षा का गरी बोर उल्लेख बाव बाल ब्रह्मना का विकास मन्द पड़ गया।

१८ वीं सताब्दी से बीसवीं के सम्म होना। बड़ी हुई राष्ट्रीय
 भाषा १९ वीं सताब्दी समाप्त होती होती बड़ी नीली की अनुभव का कारण बन
 गया। बाव भी यदि उक्त भविष्य का होता तो कदाचित् ब्रह्मना का ये स्थान
 बड़ी नीली से बड़ी थी। भारतीय युग के तो अधिक नवीन भाषाओं से प्रभु
 वीं ब्रह्म भाषा में स्थापित करी रहे। किन्तु गोपल के गौरव में पड़ी बड़ी ब्रह्मना
 बाधुनिक युग के बाधक सामाजिक राजनीतिक तथा धार्मिक बाध तापी की उत्पत्ति
 में कार्य थी। बड़ी से बड़ी बड़ी ब्रह्मना स्थान बड़ी नीली के लिए रिक्त करता पड़ा।
 ब्रह्म भाषा के बाव यह ब्रह्मना नवीन नहीं हुई थी। बौर का के बाव भाषा की भी बड़ी
 बड़ा हुई थी। धार्मिक उत्साह ठंडा पड़ने पर ब्रह्म भाषा भी ठंडी पड़ती गरी बौर ब्रह्म
 नीम में बड़ी बौर रहने के लिए फिर गरी बौर ब्रह्मना प्रभु हुए।

ब्रह्म भाषा के विकास में बड़ी ब्रह्मना ब्रह्मना राधा गंगा थे। बौर
 से बड़ी बौराण्य प्रभाव था। ब्रह्मना काल में ती बौर बौर बाधारण्य बौरा में बाधार
 ब्रह्मना या परम्परा रीति-काल के बौर बौर बौरा न बौरा बौरा के बाधित वीं गरी बौर
 ब्रह्मना बौरा भी बौर बौरा से बौरा राधा बौरा में बौरा गरी। बौरा के बौरा में बौरा
 गरी बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा के बौरा रहते थे।

बौरा बौरा के बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा बौरा

१- डा० नील - रीति-काल ब्रह्मना की प्रभुता ५०

२- राधाबौरा बौरा - ब्रह्मना की बाधा - १९१५ के

कवियों की वाचना ऐसी थी। रीति काव्य के प्रायः सभी कवि व किछी व किछी दलार के वाक्ता थे। इस काव्य के कुछ अच्छे कवि जैसे मिशरी वयसुर दलार के। मतिराम कुंभी दलार के। मुष्णन वसत दलार के, पय वीर रंछी के, मिशरीवाच प्रतापद दलार के। लुताय बाही दलार के वही मुष्णन वद दलार के वहीन थे। इन दलारों में शक्ति कुलीपती का वीर वीरा होने से हिन्दी साहित्य वाचाप मस्तक जिस फल में बना वह सर्व विधित है।

किन्तु भी इस साहित्यिक संघट काव्य में फारसी का राजमाणा थी।

उन राज दलारों ने कवमाणा की वी गीत प्रान किया तथा प्रोत्साहन दिया वह प्रत्य-
नीय है। इस प्रकार हमने साहित्य के सुकरी हुए वीर की रत्ना की। वीर साधारण
का स्वाभि होने पर स्वयं राजा गण वाक्ता हो गए। इस परिवर्तन से कव माणा की
काफी जाति फली। परिणाम स्वयं का वाचाप की माणा लड़ी जीती की वान
बढ़ने का वयसुर मिला।

५ विस्तार

कवमाणा में सवाक सीधरी उक्ति संगीत थी। कवमाणा के ज्ञान
धरता, धरता, कवता, माहुरी तथा ललित कावली वन्द्य वृत्त है। वसी लड़ी
पिछता है संगीत में उक्त वृत्त नाम हुआ। गान बिना पिछारों ने लड़ी की प्रानता
की। पं० मिशरीवाच वाक्ता ने लिखा है :-

महुरत संगीत कला की भी वसी में वीर वधि माहुर वदानी के लि
जि माणा की धरण ली फड़ी वह कवमाणा है। इस समय का सम्पूर्ण वन्द्य साहित्य
राग रागिनियों में लिखा गया। कवमाणा का स्वागत संगीत के सवीन से राज दलारों
में भी हुआ, किन्तु वन्द्यता प्रार के वन्द्य होने का फल में दलार नष्ट हो गए का

१- पं० हिन्दी साहित्य व वन्द्यता ललक - काव्य विवरण प्रवृत्त भाग १९७१ वि० पृ० ५७२६

२- पं० मिशरीवाच वाक्ता - कवमाणा का व्याकरण सं० २००० वि० पृ० ६९

छोटी की भी कल्पति होने लगी। वह हावासीस स्थिति में रागिनी की मुखाती अवस्था छोटी के हाथ के साथ साथ जब माया भी लोगों के मुखों से दूर पड़ती गयी।

राजेश्वर सिंह गान्धू ने लिखा है :-

‘रीतिराज के कवियों की सामान्य नीति ने अपना स्वयं मत प्रकट कर दिया था कि वह निर्दोष ही अग्रिम ही होती या रही थी।’

उस भाषा के फल का कारण लगी पावर का ब्याप ने का हकी
 में व्यक्त किया है :-

साहित्य के पुराने रूप काका में पुराने वार पित पिता पिता पिता,
स्त्री वार वार के साहित्य के रूप नहीं मिलता।

श्री कृष्णदास ने जन्मान्ता के पत्र का कारण दिया है :-

* कृष्णाभा कविता का प्रवाद तरंगिणी की भाँति न था, वरन्
यह एक हीमिश्र शरीर के सुख या विषाद वह एक नयना की चला या बीर उर्ध्व उभे
स्वार की सुन्ध जाने लगी थी। *

उपरोक्त विवेक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रकाशना ने थोड़े समय में ही अपनी कीर्ति जमा प्रणाली से फहरा ली थीर फिर सोच ही पकरी-मूक हो गई ।

सुभाषा न नव शास्त्रिनः-

हिन्दी भाषा का प्राचीन साहित्य कब से जिता हुआ है। प्रायः

- १- राबिन्द्र किशोरी - वास्तुनिक कथियाँ की साम्य साप्ताहिक - १९४८ पृ० ११५
- २- डा० लक्ष्मी सागर वास्वन्ति - वास्तुनिक हिन्दी साहित्य की प्रथिका-१९४२ ई० पृ० १२५
- ३- डा० श्री कृष्ण साह - वास्तुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-१९४२ ई० पृ० १६

राजस्थानी भाषा का साहित्य में प्राधान्य था। कृताज्ञा तथा गुजरती कभी राजस्थानी से बका नहीं हुई थी। इस कारण इस काल की राजस्थानी एक व्यापक साहित्यिक भाषा थी। राजस्थानी में कभी प्रकार की रसार्प हुई

पूर्व माध्यमिक काल-

इस काल में साहित्य का केन्द्र राजस्थान से हट कर कन्नड़ और काशी जा पहुँचा। राजस्थानी का प्राधान्य नष्ट हो गया और वह सर्वाधिक साहित्यिक भाषा नहीं रही उसका स्थान "कन्नड़" ने ले लिया था। "कन्नड़ी" को बारी बाड़े पर "कन्नड़" ने उसे बना दिया। कन्नड़ भाषा के इस महत्व का कारण उस काल का सामिक स्थान है।

यद्यपि कन्नड़ ने राजस्थानी को उस स्थान छटा दिया पर नव साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी का ही प्राधान्य रहा। कृताज्ञा में नव साहित्य ने कुछ भी उत्पत्ति नहीं की। उधर राजस्थानी में नव की नहीं ही उपलब्ध पड़ी थी वास्तुनिक काव्य के प्रारम्भ तक निरन्तर प्रभावित होती रही। पूर्व माध्यमिक काल से राजस्थान के विभिन्न राज्यों की स्वातंत्र्य, कलिकास, नरानर छिनी जाने लगीं। ऐतिहासिक, धर्म-तिहासिक और काल्पनिक कथा साहित्य का तो प्रभाव ही कम पड़ा। कन्नड़काल राजकीय परिवर्तनों के कारण तथा कन्नड़काल कारणों से नव साहित्य पुरापास न हो सका। कुछ फिहर गया और बहुत कुछ नष्ट हो गया। राज्यों की स्वातंत्र्य छिनी बाँटें या विभागा के अधिकारियों की निजी सम्पत्ति का कर विस्तृति के गर्त में जा पड़ी। परन्तु इस काल में केन विद्वानों ने जो नव विचारों लिए उन्हें के अधिकार रक्षित रह गए हैं विना सु-अवस्थित कुसुमान और प्रकाश नितान्त आवश्यक है। इस काल में सुसुजान-साहाय्य

रामचन्द्र कुंज के अनुसार यह निश्चित है कि यह विक्रीय संस्कार १४०० के आस पास के प्रमाणों का है।

परन्तु डा० खारी प्रसाद त्रिपाठी ने अभी संदेह प्रकट किया है कि यह ग्रन्थ बहुत बाद का लिखा हुआ है।

गीतापदी ग्रन्थों के बाद प्राप्त हुए यह ग्रन्थ दृष्टि में बहुत ही कम मिली हैं। 'कुंज' एवं 'मण्डल' नामक ग्रन्थ हैं जो महाप्रभु बल्लभाचार्य के पुत्र गीतापदी चिद्वल्लभाचार्य द्वारा लिखे प्रमाणित हैं। बल्लभ चक्रवर्त्य ने इन नामों का दो ग्रन्थ जोड़ मिली हैं :-

१- चौदावीं शताब्दी की बातें - यह पुस्तक में कहा कि नाम है निश्चित होता है चौदावीं शताब्दी की बातें की बातों का उल्लेख है। यह गीतापदी चिद्वल्लभाचार्य द्वारा लिखी गई है, यद्यपि इसकी प्रामाणिकता में संदेह है। यह पुस्तक विक्रीय संस्कार के अन्तर्गत संस्कृत के उद्धार की रक्षा है।

२- चौथी शताब्दी की बातें :- यह पुस्तक कुछ अन्य नाम लिखी गई क्योंकि अभी कुछ फारसी के उद्धारों का प्रमाण प्रमाण मिलता है। नामों में पण्डितों की बातों की स्पष्ट है तथा निश्चितता है कि यह प्रमाणित है।

प्रमाण- प्रमाण-

नामाचार्य द्वारा लिखित यह ग्रन्थ प्रमाणित सं० १५५० के नव साहित्य का अनुसंधान है। अभी प्रमाणों की विवेचना है।

१- बाबाय रामचन्द्र कुंज - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४०१

२- डा० खारी प्रसाद त्रिपाठी - हिन्दी साहित्य - पृ० १५४

सं० १५७५-१५७६ ईश्वरमणि द्वारा गारा लिखित कागज महात्म्य,
विशाल महात्म्य की प्रकृति प्रमाणों का वही उपलब्ध है कि पर सही नीली का प्रमाण
प्रमाण है।

कामीन्दर काव्य का :- ये रावक्याय के रली काउ थे क्यणि उवा
 १०१५ के लामा मारकण्डेय पुराण काया लिखी ।

सं० १०५० के ताम्र लिपि द्वारा किसी वंशावली के लिये का "नामिका-
पत्रिका" मिलता है।

जयाराधनदास ने सं० १९२६ में "जयाराधन पूजा" की रचना की।
बाकी लखनौ की भाभा लाला जीरादास ने सं० १९२२ में जयपुर नरेश स्वामी प्रतापसिंह
की भाषा से लिखी। बाकी लखनौ की भाभा उई शर्मा के साधिका से बना हुई है।
वीर लाला विष्णु प्रसाद एवं श्री लालदास की वास्तुशिल्प पूर्ण प्रशंसा है।

जिन देशों के बसिरिक्त मनीषस्यास, ईमराज पाण्डे, भाषान मित्र
मैथिल - भिन्न या रामचरणदास आदि हैं।

यदि हम कर्मों में प्राप्ता कृत्यान्ता गम में ध्यान दिया जाय तो यह कृत्यान्ता का गम न तो परिष्कृत है और न मार्गों का विश्लेषण करने में समर्थ। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने इस कृत्य में विशेष ध्यान देने का कष्ट न भी नहीं किया। कृत्यान्ता गम की भाषा ही गरीबी। हम में ही इसकी अभिव्यक्ति सक्षिप्त प्रारंभ थी। यदि प्रयत्न किया जाता तो हम भाषा का गम सन्तोषजनक रूप में प्राप्त करता था क्योंकि उसके प्रारम्भिक कर्मों में वास्तव के संस्कार मिलते हैं किन्तु परिष्कारित नहीं होती थी कि उनमें गम का विकास सम्भव भी नहीं हो सका।

कृष्ण भाषा का क्लासिक साहित्य-नव साहित्य-

कृष्णभाषा में लिखित नव मौखिक कृत्यों के अतिरिक्त क्लासिक नव साहित्य भी मिलता है जिसके अन्तर्गत कृतित नव साहित्य तथा टीकाएँ आती हैं।

कृष्ण भाषा नव का कृतित साहित्य-

१७ वीं सदी कृष्णभाषा नव का स्वर्ण युग की जा सकती है। इसी प्रकार १८ कृष्ण भाषा की परिष्करण करने का वास्तव चढ़ने लगा परन्तु कुवादी का एक बड़ा साहित्य सहा हो गया। कृष्णभाषा में कुवादी का यह कृष्ण १७ वीं सदी तक चला रहा। इसी समय तक क्लासिक होने वाली वह साहित्यिक परम्परा में जाता है साहित्य रहा होगा सत्ता यह विश्वास करेता कभीभीन नहीं जान पड़ता क्योंकि धार्मिक संस्थाओं का सत्ता अधिक बोर उस काल में था। प्रत्येक सत्तायुक्त कर्मी मन्त्रा सिद्ध करती में धर्म य त बोर उसके लिए आवश्यक था कि वे अपने प्राचीनता को परम्परा छिद्र करे तथा अपने सम्प्रदाय की धार्मिक पुराणा के लिए उसकी वास्तव्यता की और धार्मिक पुस्तकनि हीं जितके लिए संस्कृत की सरण वार्म की अपेक्षा अन्य कोई सम्भावित मार्ग नहीं था। सम्भवतः यही कारणों है धार्मिक कृत्यों के ही कुवाय अधिक हुए।

महाभारत द्वारा कृतित 'नव भागवत गीता' तथा कबीरदास निरंकी द्वारा कृतित 'छट वल्ल भिण्य' बोर छिद्र विद्वान्ता की पुकता देने वाला किरी वसात कवि द्वारा 'छिद्र विद्वान्त' का कुवाय उस काल का पुक है। इसका अन्वय यही है कि धार्मिक कट्टरता के कारण कुवाय साहित्य का ही पड़ा पड़ा सहा गया या किरी उदात्ता की प्रतीक्षा कर रहा होगा।

कब कब में अनुवाद प्राप्त: संस्कृत ग्रन्थों के हुए क्योंकि अन्य प्रसिद्धि माताओं का न ही ज्ञान वैदिकी प्रचार ही था और न किसी साहित्य में ऐसी उपलब्धियों की मिली संस्कृत में। कब कब की रचनाओं में प्राप्त: सामान्य प्रसिद्धि रही। कुछ ये केवल कब का और कुछ में कब का दोनों का उल्लेख किया गया।

संस्कृत के अतिरिक्त कुछ फारसी ग्रन्थों का अनुवाद भी ज्ञानाभा में किया गया जो संस्कृत उपनिषदों के फारसी में अनुवाद थे। संतर यह काफ़र ने सं० १७७५ में उक्त भाषा अनुवाद किया। उन ग्रन्थों की संख्या नीचे है।

केवल कब और कब भिन्न दोनों में अतिरिक्त ग्रन्थों के विषय प्राप्त: धार्मिक वार्त्तिक साहित्यिक। गद्यादि तथा वैदिक। आदि है।

धार्मिक ग्रन्थों में पुराण, उपनिषद्, गीता तथा दर्शन ग्रन्थों के अनुवाद है। किसी अन्य नन्ददास ने नाथीता पुराण के ज्ञानाभा कब में नाथीतु-पुराण भाषा नाम से संस्कृत १५१७ में अनुवाद किया। यह अनुवाद ज्ञानाभा भिन्न पार्श्व में लिखी कब में किया। तीव रिपोर्ट से १७५५ में हुई ज्ञाना व साहित्य दोनों का पता पता है।

जो विप्रति राजा ज्ञानाभा नाथीतु पुराण की कृतारप है की कीव प्राणी ज्ञानाभा कि वे करि हुए में की ही पार्श्वी कीव के राजा ज्ञानाभा पार कीव भी कीव वक्त गऊ दिय के फल कीव।

यह भाषा का स्पष्टता दृष्ट्य है।

सं० १५५६ में चन्द्रसेन मिश्र के 'मायव' निदान' नामक वैदिक ग्रन्थ की वस्तुस्थिति प्रति प्राप्त हुई है जो संस्कृत के प्रसिद्ध 'मायव निदान' वैदिक ग्रन्थ का

अनुवाद है।

श्री जयचंद के शिषी ज्ञान बाबा ने भी सं० १७४६ के बाद किसी एक ग्रन्थ का फारसी में नव-नव मिलित भाषा में ग्रन्थ लीकरी नाम से अनुवाद किया। सं० १७९५ बामोदस्वाध ने भी दासु चम्पराय के साधु से मार्कण्डेय पुराण का ज्वलान्ता नव में अनुवाद किया। जयंत शर्मा की लोहू मरीछ से भाषा की एक रत्ना मन्द की गई है।

सं० १७९७ में देवी चन्द ने संस्कृत की प्रसिद्ध पुस्तक उपनिषद् परक कथा पुस्तक वितीर्षित का ज्वलान्ता नव में अनुवाद किया।

सं० १७५६ में श्री रामानुजाचार्य के वापार पर पावानुसार श्री ने श्रीमद्भागवतगीता का अनुवाद भाषानुसृत नाम से किया है। इस भाष्य की भाषा की विशेषता यह है कि जिस फर्में में 'है' का रूप 'है' रखा गया है।

सं० १७६० में ब्रह्म विष्णु ने संस्कृत वेदाङ्ग पंच विंशति का ज्वलान्ता नव में अनुवाद किया। श्री चतुर्दश श्री पुस्तक के वापार पर लखनऊ श्री ने लड़ी लोरी में 'वेदाङ्ग पञ्चीषी' की रचना की।

सं० १७६९ में जगन्मोहन ने 'श्रीमद्भागवतगीता' का अनुवाद नव-पञ्चम ज्वलान्ता में किया।

सं० १७७५ में किसी अज्ञात कवि द्वारा दस उपनिषदों का अनुवाद प्राप्त है। इसकी भाषा लिपिहीन और अस्पष्ट है। कहीं कहीं लड़ी लोरी विष्णु रूप का समर्थन भी परिलक्षित होता है।

जगन्मोहन का 'ज्वलान्ता' नव साहित्य यद्यपि नव है तथापि इसका नव २०० वर्षों तक जलता पला। लोक विजय ग्रन्थों के साहित्यिक रूप भाषा नव में

कुत्साप दुर। धार्मिक ग्रन्थों के कुत्सापों से साहित्य सम्बन्ध हुआ।

जहाँ तक कुत्सापों की भाषा का प्रश्न है। वह टीका और वातापों के बीच की कड़ी कही जा सकती है।

कुत्सापों का टीका साहित्य-

जब भाषा में विहित उन धार्मिक ग्रन्थों में कुत्सापों के वितरित टीकार भी मिलती हैं।

छात्रों छात्रों के मध्य से लेकर कुत्सापों छात्रों के कर्म या बीछों छात्रों के कारण तक उनका समय उबरता है।

टीका ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता यों हुई कि विषय का विवेचन कर समझा दिया जाय। परन्तु कुछ टीकाओं की भाषा तो उरल और मुगल होने की वजह से किछ और दुरुस्त हो गई है।

विषय वस्तु की दृष्टि से टीका ग्रन्थों का तीन भागों में विभाजित किया जाता है। १- साहित्यिक २- धार्मिक तथा अन्य ।

जब का साहित्यिक ग्रन्थ टीकाओं से भी मिलता है। टीकारें ज्यों ज्यों की स्पष्ट करने के वितरित व्यवहारिक भाषीका के लिए भी लिखी जाती थी।

‘भाषा भूषण’ रचिता जयन्त सिंह ने अपनी विचार रखी हैं। कुत्सापि किन की ‘सुखद’ नामक टीका में धार्मिक कुत्सापकार हैं। ‘केलनास’ की ‘रक्षिप्रिया’ पर उत्तर और नारायण क ने भी टीका लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उन टीकाओं की यह विशेषता है कि जहाँ भी धार्मिक ग्रन्थ की भाषा

नव खं पन मिश्रित प्रभुति की पाई जाती है। रीतिरासीन ग्रन्थों में सबसे अधिक टीकाएँ विद्यारी सत्यरं की लिखी गईं जो नव पन मिश्रित हैं।

बुध्ण मिल, धुरत मिल तथा ठापुर की टीकाएँ नव में हैं। राधापरण नाम, कनरसिंह काकनव की टीकाएँ नव पन मिश्रित हैं। यह प्रकार की साहित्यिक टीकाएँ में से ये अधिक प्रसिद्ध हैं :-

रत्ननाथ की कविप्रिया पर धुरत मिल की 'कविप्रिया सितल' नामक टीका तथा रसिक प्रिया पर 'रत्नाचक वसिष्ठा' नामक टीकाएँ।

हरिहरण दास द्वारा लिखित कविप्रिया रसिक प्रिया तथा माया प्रवण नाम की टीकाएँ हैं।

माकू लॉ एक व मुहम्मद न की रसिकप्रिया की टीका लिखी है। हरिहरणदास तथा बलरसिंह दास के तथा बंहीधर जावि प्रभुति लिखी ने मतिराम के नामक प्रवण पर टीकाएँ प्रस्तुत की हैं।

धार्मिक टीकाएँ-

धार्मिक नामका से प्रसिद्ध होकर भी विद्वानों ने धार्मिक ग्रन्थों की कुछ नामका नव के टीकाएँ की।

'भक्ति रत्न नीलमिती', विहीनस प्रीति, काकन वीता नामका, सित वीराधी की टीका नामक टीकाएँ प्रसिद्ध। कनारायणदास, कनारा, कनारा, प्रनारा, प्रनारा माधुर, बुध्णविय तथा काकनदास ने लिखीं। नामापास कृत मत्तनाथ पर प्रनारास कृत टीका की। टीका वीर दुष्टान्त कनारायणदास द्वारा भक्ति रत्ननीलमिती नाम से हुआ। कवयि ग्रन्थकार एवं दुष्टान्तकार ज्ञान हैं। यह विषय में लोगों में काफी मतभेद है। परन्तु कनारा की टीकाकार वीर कनारास की दुष्टान्तकार माने जाते हैं।

जहाँ तक सम्मान्य विषयों का सम्बन्ध है वहाँ ज्योतिष्य बादि
वीरिष्ठ विषयों पर भी टीकाएँ लिखीं गयीं।

जिसी ब्राह्मण व्यक्ति ने 'मुक्त वीरिका' नामक छठीक ज्योतिष्य
ग्रन्थ की रचना की जिसका तिथिमात्र १६३० है। उसी भाषा में वही जीतियों का
प्रभाव अधिक बतला करता है। बाबुरीय पुराण पाठे नन्दराय ने 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका'
नामक संस्कृत ग्रन्थ की टीका लिखी। हरिराय जी के अनुबोध गोविन्दर जी ने सं०
१६५६ से १७५० तक हरिराय जी के संस्कृत ग्रन्थ 'विज्ञानार्थ' की टीका की। उसी
भाषा स्पष्टता दृष्टव्य है।

प्रमदाय ने सं० १६५० में कृष्णभाषा नव में रचित चोरासी की टीका
की। जिसकी भाषा अधिक से मध्यम ब्रह्म काव्यात्मक भाषा की बहुत ही मधुरता है
व्यक्तिगत कहती है। बाबुरीय ब्रह्म देव ने सं० १७५० में भागवत की टीका तथा उही
संस्कृत में राधा ब्रह्म पाणि ने 'मिशरी सत्तव' पर टीका लिखी। संस्कृत १७५६ में
महाप्रमदाय ने रामानुजाचार्य की पद्धति पर भागवत टीका भाषानुसृत नाम से लिखी।
उसी भाषा बाफ़ बतली है। प्रसन्न मित्र ने कनकचम्पिका नाम से मिशरी
सत्तव की टीका लिखी।

संस्कृत १७६६ - १८०० में सुभाष ने मिशरी सत्तव सत्तव नामकलीला
भाषा नामक टीकाएँ लिखीं। उसी भाषा में वही जीतियों का बाबाय फंदाजीफ के
पुत्र के साथ स्पष्ट होता जा सकता है। इन टीकाओं के बतिरिक्त प्रमदाय ने रामतीयाय
के बट्टक की 'बट्टक टीका' लिखी। के फुरे ठापुर ने मिशरी सत्तव की 'कनक-
चम्पिका' टीका लिखी। रामचरित मानस की 'मुक्तावली' नामक टीका जिसी ब्राह्मण

कवि द्वारा लिखी गयी। महात्मा जिनानन्द रीवा नरेश ने सं० १९०१ गीत सन्तान पर टीका लिखी। तथा कृष्णा, कृष्ण प्रसिद्धी बापि पर टीकाएँ लिखी गयी। नरेश बाप बाप बाँर भी लोक टीकाकार हुए।

टीकाओं का एक व्यापक साहित्य है। जहाँ से कुछ साहित्यिक कृत्यों बाँर बहिर्गत साहित्यिक कृत्यों पर टीकाएँ हैं। पंक्तिगतका भी है। साधारण छंद से व्यक्त करने की प्रथा रस रसा के बीच में गद्य का जोर है प्रकृत्या में स्वीकृत नहीं हुआ था। गोपेश्वर जी, प्रसाद जी, महात्मा जिनानन्द जी, जानकी प्रसाद मिश्र बापि टीकाकारों की भाषा बलवन्त सरल, स्पष्ट तथा विनयाश्रित है। यद्यपि बहिर्गत टीकाओं की भाषा उतनी सरल नहीं है फिर भी नहीं कहा जा सकता कि ये साहित्य की दृष्टि से निरुत्तम नहीं हैं। डा० स्वामी प्रसाद मिश्र का कथन है कि 'टीकाओं की भाषा उतनी बहिर्गता है कि ये कुछ से भी निरुत्तम बाँर बलवन्त प्रवीण होती हैं।'

टीकाएँ एक लम्बी साहित्यिक परम्परा के लक्ष्य मात्र हैं। कविता की प्रभावता के समय में जो गद्य साहित्य का सर्वोत्तम विषय हुआ है तथा साहित्य में क्या टीकाओं में क्या अनुवादों में एक साथ हो ही रहा था। यद्यपि अनुवाद का साहित्य टीका तथा साहित्य की अन्तिम रूप है परन्तु फिर कदा कदा २०० वर्षों तक अन्तः प्रता रहा। लोक विषयों के कृत्यों के अनुवाद हुए हैं। साहित्यिक कृत्यों के अनुवादों से साहित्य सम्पन्न हुआ।

साहित्य रूप में प्रभावता गद्य के छिद्र यह कहा जा सकता है कि प्रकाश की प्रभावता गद्य उन्निता का विषय रहा। इस गद्य साहित्य में अन्तर्गत सागर की

पुनः ग्रन्थ का निर्माण भी नहीं हुआ। परन्तु फिर भी विस्तारिता प्रकाशना का यह साहित्य विशेषकर लोक कथा साहित्य पर ही अधिक पूर्ण होता हुआ भी अब की भाँति भाँति नोखा जाता हुआ है। फलतः अब की लोक कथाओं में विस्तार अब साहित्य माध्यमों, कलात्मक और कलात्मिकों के अन्तर्गत ही हुए सांस्कृतिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक तत्त्वों पर आधारित है।

जैसे इतिहास काव्य संग्रहों के बीच बीच में खानेपाती टीका कभी भी प्रकाशना का ही प्रयोग किया गया है। ये टीकाएँ और खाल्सा अब भी इतिहास गुजराती के संग्रह कवि । १९६४ के। रामजीवी सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण दास के कथाओं का संग्रह । १९६६ के। राजनीतिज्ञ के गोविन्ददास । १९७१ के। प्रताप-सिंह के रीति ग्रन्थ अन्वयार्थ संग्रहीत । १९७५ के। रामराय के रीति ग्रन्थ काव्य प्रकाश । १९७७ के। तथा सरदार कवि के मानव रहस्य काव्य ग्रन्थों में बीच बीच में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु इतिहास गुजराती के संग्रह कवि १९६४ में प्रयुक्त अब का नमूना का प्रकार है :-

एक पक्ष में एक विरिणा फली का विरिणा ने प्रहरी की तु नहीं
की फलीर एकाकी का भी की तु कहा करती एक वाने की की में ती की मातिका लालीनी।

प्रकाशना अब भी बीच की नवीन आवश्यकताओं के साथ अभी की उल्लास न आता उल्लास। संग्रहों में सांस्कृतिक कार्यों में आरम्भ है ही लड़ी नीली का प्रयोग किया। अब संग्रह में कीड़े सामाजिक आवश्यकता उल्लास नहीं हुआ भी प्रकाशना अब की प्राणधान कहा। सामाजिक कला की नवीन गतिशील रीति लाल है ही लड़ी नीली पुर फली की। फलतः प्रकाशना अब अपना विकास न कर सका।

सुदृढ कर्माय

सुदृढ नीति का उद्दिष्ट

सही नीली का साहित्य

सही नीली का काव्य साहित्य-

मानव भस्तिष्क के विकास के साथ साथ भाषा तथा साहित्य में भी परिवर्तन हो जाती है। एबीकात का यही उदाहरण है। हिन्दी कविता काव्यी का जन्म से भारतीय संस्कृति पर प्रभाव हुआ है, विविध फट-भस्तिष्क हुए हैं। कभी तो कवि प्राकृत मिश्रित भाषा का रूप धारण कर रणकन्डी का पैर बनाया और कभी कवि भाषा की सुन्दर सही पहिण कर नामर नटवर के ली रास रचाया और फिर सही नीली वाङ्मयण से सुवर्णित होकर साहित्य काट ली जाया दिया। यों तो उस समय भी सही नीली में कौर ली हुए थे जब कवि की नीति में कविभाषा नीली लखता रही थी। पर वह समय हठा था जिसने विप्लव होकर वे कौर लखता कभी थे, भक्ति रस की ली पारा नव रही थी वह कविभाषा तथा कृष्ण काव्य के लिए ही उपयुक्त थी।

सही नीली का कविता काव्य तीन कालों में विभाजित हो सकता है :-

- १- शीतल से भीषर पाठक तक । प्रारम्भिक काल ।
- २- पाठक की से बर्बर प्रताप तक । चरस्वती काल ।
- ३- वर्तमान काल ।

शीतल से पूर्व सुवर्ण, कभीर, नामर, लीप, पुष्पण, सुन, पनाने वादि की सही नीली में हूँ रचना है। वागमयन की विरलता की भाषा का उदाहरण -

सहीने लाम प्यारे कौन न जायी ।

परण फिमाही नरं किशो विवाही ।

कहाँ हो नु कहाँ हो नु कहाँ हो ।

तो ये प्राण तुमरे हैं कहाँ हो ॥

तुमारी कथा कबीर की रसावली में तड़ी नीली का रूप स्पष्ट व्यक्त होता है। डा० रामकुमार कर्मा ने तुमारी के नीली, दोरी की भाषा में कथा कथा का माने हैं तथा किशो और कहे किशु तड़ी नीली के। जो कारण वे कथाका न मानकर तड़ी नीली ही मानना अधिक समीचीन समझते हैं।

डा० बीरेन्द्र कर्मा का भी मत है कि एक ही तुमारी की रसावली वाच्य जिस रूप में मिलती है, वे वर्तमान ही जायज है, प्राचीन नहीं। प्रारंभ उनकी वफावारी रसावली कथाका में न होकर तड़ी नीली में है। जो दोनों बातें है संभवतः सही विचार समझें। दिल्ली के मारुत भाषाकारों का उत्थान फल देने वाले यह कवि के लिए दिल्ली मेरठ की कथाका में रसावली ही स्वाभाविक था ही परन्तु साथ ही साथ वह कथाका से भी वपरिचित नहीं रहा। कबीर तुमारी की पहचान मुसलमान दिल्ली मेरठ की तड़ी नीली में है, जिनमें बली-कारण के सज्ज हो मिली हैं तथा दोरी एवं फाँ की भाषा मिलि कथाका है।

जो प्रकार तड़ी नीली काव्य का पुष्ट बीच कबीर तुमारी की रसावली से प्रारम्भ होता ही है।

वास्तव में तड़ी नीली का समय बाबू से दो ही लाख पहले होता है। वास्तव होता है। तीसरा का समय संवत् १७८० के लगभग माना गया है। बाबू केकाव्य काव्यतन्त्री टट्टी सम्प्रदाय के मत है। उई की कविता तथा हिन्दी की तड़ी नीली

१- डा० राम कुमार कर्मा - हिन्दी साहित्य का बालीभाषात्मक इतिहास पृ० १००-१०१

२- डा० बीरेन्द्र कर्मा - कथाका कारण पृ० २६

की कविता जामा एक ही काल से प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में दोनों की भाषा एक ही थी। धीरे धीरे मुसलमानों ने उसे बदली— फारसी के जाल में फँसाकर उई करार दी और ईश्वर के राज्य ग्राहक ने उसे हिन्दी कहा। चीतल ने पार भागी में गुस्सा कर 'नामक' ग्रंथ लिखा है। बाफ़ी कविता में लातिन के बीर विद्वत् सही नीची में लिखा गया है। फारसी एवं फ़ारसी के राज्य अवश्य बापि हैं, पर नामा सही बाफ़ी की है।

अंग्रेजों के राज्य के पार का कवि विवर्ण करता है :-

कमर्द मन्द मुखानक रहे तुम जिन उर दूजा हुए नहीं ।

तीसरी विवर्ण का राज्य जाल पिल में ही वह तक पुरा नहीं ।

तुम हुए तत्त्व में ५ दिक्कर हुए हम लोग का पुरा नहीं ।

विद्वत् के नीचे विवर्ण हैं, चीतल का नीची पुरा नहीं ॥”

अंग्रेजों के विवर्ण सही नीची के पार कवि मुँही क्या हुए विवर्ण विवर्ण हुए हैं, जिनका जन्म सं० १८०० है। अली की कवि उपलब्ध नहीं होती। जाल उल्लेख वाला कवि ने “विद्वत् बाफ़ी” शिष्टा का टोका नाई टर जिन “विद्वत्” की बाठों पिल में लिखा है।

“ ताई जिन जिन ने ही ग्री चीर छे ।

बीर विवर्ण न ताई ने ही विवर्ण गतापती ।

जाना जिन लोग ने विवर्ण का मुँही में,

विवर्ण न जाना ने ही जाना है कतापती ॥”

बाफ़ी रचित ने ही जिनका जन्म सं० १७५५ के जामा था, सही नीची में कविता की है और अंग्रेजी चरण भी सही नीची के कवि हैं। संवत् १८२० के जामा

ललितकविगीरी की रचनाएँ सड़ी नीली में लिखी गई मिलती हैं जो राक्षसद्वारियों में बहुत प्रचलित हैं। बीरे बीरे नद, हवा था जिसने ही सुखलान तक खं कवि का सड़ी नीली में रखा कर राक्षसी भाषा के बरणा पर अपना धिर मत कर गए हैं। कैतकी कदानी कदने वाले कलावत्ता खाँ ने अपनी कलानियों में पीछे से पय नकार हैं। यह ऊपर के एक उत्कृष्ट कवि नबीर कलराणादी हैं, जिन्होंने सौतेले रत्नान तथा यदुवय सुखलान कवियों की प्राचीन परिपाटी पकड़ कर हिन्दू वैष्णवी तथा भारतीय विषयों पर कवितार की हैं, जो भक्ति के भावों से भरी हैं।

ये कलराणा सरिता के बीच लौटी लौटी लहरियाँ थीं। उनका प्रभाव प्रतीतीय है। उनके साधारण रूपि ही उत्तरी उत्पत्ता न मिली, जिसकी ज-साधारण ने अपने प्रति जिसके फाँदल, नाच-गाने, रास कलापि रसपाशों द्वारा परीक्षा रूप से सजाता था। राक्षारी, नाटकी जादि गानों से सड़ी नीली के नद, पूछ करे में नदी छायाता मिली। जिनमें कदने नकल नचाते से सड़ी नीली की है जीठी व कि सारा प्रहार निष्कल ही गया। ये लोग जान बूझ कर ही प्रयोग नहीं करते थे कि कविता सड़ी नीली में लिखी जाये। वेब जता की रूपि के अनुसार उनके समकाली योम्य भाषा काय में लाते थे। उनके वसिरित्त ललितगीरी एवं राजलगीरी के नाम सड़ी नीली के कवियों में उत्पत्तीय है। सड़ी नीली में उनकी की रना करने वाले लोक हुए, जिनमें नाराधीदास विशेष थे।

‘विष में पाये की दीपार कौण्ट के शिखार मुष्ट कलि करने बरी के पट में ।

कवि कैवीरिह है कल केस नटलट के कवि ‘नाराधी’ उन वासित्त व नगर नट के ।’

उपर ललक वाली ने नलफिल में पुरानी भाषा जोड़ की नवीन शैली का अनुकरण किया। कल पिया, कल पिया, फरलत जादि ने गाने गाकर

कता का दुक्य मुन्ध कर दिया ।

कर पिया की खारी -

* नारे "ता ने खिना मतीर खरी ।

कर पिया तुन की ची रही ।

उठ कष्ट खुरिया तीर खरी खरी ॥ "

करता की क रता बैलिय -

* क जीवन मतीर फुला है मीरी तुन नायान की प्रता है ।

इ प्रकार इन कवियों ने सही नीती के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

विशेष विचारणीय बात यह है कि इन कवियों ने कविता के

मुख्यों का रंग तो बखस्य भवता, पर उन्हीं मुख यह पुरानी हो थी, यही मुख में मुखों की तान, यही राधा की मुसकान, यही काकिनी कुल और यही कदम के फुल एक नए वावरण में बिताई देने ली, पर पाठक को के लिए नया भवान खगार हो गया। पाठक को है फल भारतीन्दु ने भी सही नीती में कविता की थी।

* "वसन्त पिलाय" तन्त्रार पं० बालिकाय भ्यास ई पर भी उनका प्रभाव पड़े मिला न रहा। वाप भी सही नीती की कविता लिखा करते थे। ए० १८८६-८७ तक कविता की भाषा का विनाय पक्ष पड़ा। बीनों और स प्यों में कुछ छिड़ गया। फिर ए० १९१० में सरस्वती पत्रिका का प्रावृत्ति हुआ और जोड़े हो विनों में उनका सम्मान जाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में जागया। द्विवेदी जी है उनके परवर्ती कवियों ने प्रेरणा ग्रहण की। पं० नाथूराम शंकर लाल, राखीजी प्रसाद, पूर्ण नाथ, मेथिली शरण गुप्त सरस्वती कास के पक्ष प्रवर्तक कवि थे। जहाँ मुख के पीत और राधा की कंधी फल कवि अपनी खारी कस्सा खर उठ पड़ी, यहाँ लम्बी और सरस्वती के पक्ष

कक्षा की बाराफा होने लगी। कवि ने सही नीली में लिखा जाने लगा।

यही समय था जब बाहू मेथिली शरण ने भारत-भारती लिखकर भारत की भावों की जागृत कर दिया था। जब वेकता की ध्वनि उठ उठाकर देश की ध्वनि में कविता को फिर बसायी लगी। राष्ट्रीय बीणा की मंजार कानों में गूँव नहीं थी कविता छोरियाँ फैकर कोनस कमल से, गुलाब के दल से सुल सेग पर सुलाती थी वह कबने लगी :-

“ पर राय का भी तो नहीं निडा कमारी टूटती ।

की छुटने हैं कि जो का भी नहीं है छुटती

वे सुन लगी तब हैं कि न जाने कौन का राय फिना,

किसा बहुत बूझ बूझ किन्तु धमने का बूझ फिना देता फिना । ”

जैसे फलवाट गया प्रभाव सुस्त, नाथन प्रभाव सुस्त, कपीध्वनि
उपाध्याय बादि ने सही नीली में सुन्दरकाव्यों की रक्षा की।

“ प्रिय प्रभाव की सही नीली का प्रेम महाकाव्य कहा जाने का गोख प्रभाव हुआ है। उसकी भाषा बहुत सही नीली है और सरसता स्व मधुरता भी लभ्य है-

“ स्पीकान प्रकुल प्रापकछिकारीक्यु पिन्नाफा

तन्की कस रंजिनी डीडा कस पुवती ”

“ हरिणीय ”

कर्मन कास-

नवीन कविता के प्रस्ताव होने का मेय ना जस्तकर प्रभाव की है। नवीन कवि अधिकतर सुस्तक हन्व लिखती हैं। जाधुनिक काव्यों में वादों का बाधिवन

६ - वायावाद, रहस्यवाद, प्राप्तिवाद वापि कौन-कौनों की स्थापना पूर्ण
अर्थव्यवस्था की पूर्ण अभिव्यक्ति वाय के काव्य का विषय है वाय का काव्य का
वाधारण की वाणी देता है।

सही नीती की फं कौन-कौनों काव्य सही व पाँच सही वाणी

६- ठंड हिन्दी, पण्डितवाक्य हिन्दी, मुँही जी की हिन्दी, मोखी वाक्य की
हिन्दी और ४ अक्षरों की हिन्दी ।

१- ठंड हिन्दी- विदेशी एवं संस्कृत शब्दों से मुक्त केवल और तत्त्व
शब्द अधिक होती हैं।

२- पण्डितवाक्य हिन्दी- संस्कृत के लंबे लंबे एवं कठिन शब्द होते हैं।

३- मुँही जी की हिन्दी- मुँही जी की हिन्दी पण्डित जी व मोखी
वाक्य के बीच की हिन्दी है, जिसे लोग हिन्दुस्तानी कहते हैं।

४- मोखी वाक्य की हिन्दी- मोखी वाक्य की हिन्दी फारसी
वाणी संज्ञाओं से भरी रहती है। इसकी मोखी खल उड़ कर
फुटती है।

५- अक्षरों की हिन्दी- अक्षरों की हिन्दी व लोको के तत्त्व संज्ञा शब्द
वाते हैं।

सही नीती के नीत-

सही नीती में एक स्थापना वाक्य है प्रारम्भ की गई थी। बाद में
वर्तमान की के तत्त्व प्रारम्भ से सही नीती की स्थापना कुछ कम हुई। अनुमानित स्थापना
सफर सही। प्रकृति वाक्य नीती व नारी के वर्ण प्रारम्भ में गुप्त जी की वाक्य

सफ़रता मिली।

सही लीली के गीतों का क्रमिक विकास प्रयाप से प्रारम्भ होता है—
नये हुए हृदय, माधुर्यपूर्ण हृदय सीपना, सीपलता व गम्भीरता का प्रवेश आदि गीत
काव्य की विशेषताएँ उनके गीतों में ही सर्वप्रथम मिलती हैं।

प्रयाप के नाट्य गीतों में लौकिक, पारलौकिक विवेका का बहुत
स्मावेश हुआ है।

प्रत्येक काव्य में मुक्तक गीतों का स्मावेश है।

प्रकृति पर डालि नायका का वारोप—

‘फटा हुआ था नीस कम लग जी । याक की मलाली ।

कैस बर्किस बात सुता तेरी हथि पीली माली ।’ १

तारे के सम्पीकन करते—

‘तुम के हुन्दरतम रहल्यो बी—’

बांग्र में हृदय की नवीनता, नया उफ़ा विधान, प्रीति प्रवृत्ति,
वकी भावों की चम्का में बरकत सकस रही । बांग्र की ही उन्वनि मस्तिक की
फरीशत पीड़ा का है —

‘बी फरीशत पीड़ा बी । स्मृति की मस्तिक में हार ।

इकिन में बांग्र बनकर पर बरकत रहल्यो बी ।’ २

बाजना का उन्वनि विच्छेद व कवि की परिस्थिति से सम्बन्ध
कही बांग्र के गीतों की रूप रेखा है।

१- बरकत प्रयाप- कामायनी बाजना की १ पृ० ४

२- “ “ “ “ “ ५० १०

३- “ “ “ “ “ ५० २०

माना कि हम सीमा से नीचा हैं पुनरुत्थित ।

तब एक बार वापस मैं, निष्ठील धृष्टि में बने ।। १

मुक्तक गीत ऊपर नीचे फलता मैं मिली हैं :-

तब बस मुझे पुलावा देकर

मेरे नाथिक धीरे धीरे ।

चित्त मिलने में धागर लखी,

बनकर के बागी में गहरी

निश्चयल प्रेम क्या कहती हो,

तब कीलावत की लकड़ी १ । २

सन्त-

सही गीतों के गीतों की कुरीत सीधी पत है- शिवालय की सुरंग
शिवालय पाटियों में बलि-कल्पना का विकास हुआ था। कविता में भी वही प्रभाव
स्पष्ट है। भाषा की प्रशिक्षण एवं साधारण रूप देने में सिंह बल है -

उस फेरी पहिनाली मैं, ऊँचा की मूढ़ लाली मैं ।

जीन लौली लैत रही मैं, कल लकड़ी बरसाली मैं ।

हम्य बन्धनों से मुक्त गीतों की प्रत्यक्ष-प्राप्त्युति और गहराई मिल
सकी। उनके ये गीत गुन्धन, गान्ध्या, उबरा मैं हैं :-

तुम गये हम्य के बन्धन लकड़ी के मुक्त लाल ।

कल गीत मुक्त की तुम बाणी कहती बरसा । **

मेरी वाणी क्या तुम्हें चाखिय बरकर ।

निराशा-

सुखान्त धिपाठी निराशा के गीत बालान्त स्वर हृदयों में लिखे
गये हैं पर क्या हैं -

‘ एक माया है मुक्त हो गया हो तुम,

नाशनी न कब हृदय क्यों उछो जानन्द मैं हँ उन्मिषानन्द ह्य । ’

महाविषी-

उड़ी गीतों के गीतों में कभी अधिक वास्तविक पीड़ा केतनी
होती महाविषी क्यों के गीतों में मिलती है। उनके गीतों में उनका सुषम गीतज्ञान
विस्तार होता है। प्रतीक विषाखिनी प्रतीक जिसमें माफगर्बी की मूर्त ह्य किया
जाता है, काय में बहुत अधिक माया में है। बाकी है ह्य किमान बहुत मनीषर
होते हैं। बीजमयान वाली कविता की मूल पंक्तियाँ-

हृदय काय के सुखितों पर बाहर सुपरी हो मान ।

ये महा जाता करों में यह रहस्यमय बीज ॥

मैं नीर परी कृत की बदली ।

विस्तृत नय का बीजा बीजा ।

कीर्तन न कभी अपना बीजा ।

गाथा अपनी हस्तियाय यकी ।

उमड़ी कृत हो मिट जाय पत्ती ।

तथा- पर शेष नहीं छोटी यह भी प्राणों की पीड़ा ।

हमकी पीड़ा में हूँ, तुम हूँगी पीड़ा ।

प्राप, साम्य, सम्पत्ता एवं स्व निष्ठा व जबरन विरत तापता
में पीड़ा व मजबूती का मैं कष्ट साम्य है।

गीतास शरण तित-

वापसी सही नीती हम फावली में जवाबदा का सा फिदा
पिछता है। वापसी भावोंका कलमा भी बहुत उबरता है। वापसी प्रेम की जीव
उत्थिता वस्तुतः जलनापूर्ण है- के

‘मन तो गया है फावली ही उनके अभीप,

किन्तु हमी जाती नहीं मन की कल है।’

पं० मातल सास फावली-

ये राष्ट्रीय शक्ति हैं। उनकी रक्षाएं वेद प्रेम के भावों से युक्त रहती
हैं। अतीत विषय की समीक्षा हम के कारण उनकी रक्षाओं में सम्पत्ता एवं निष्ठा
दृष्टिगोचर होती है। उनकी रक्षाएं कलमा के व्यापार का फावली नहीं, उनका अस्तित्व
बीज की स्टीर कृष्ण पर निर्भर रहता है। कलमापूर्ण भावों की कुछ पंथिया :-

‘हरे कलम शेष की गोपी तिरा भी मिथाना था,

जो भी आराध्य शिखरों में भी हूँ शिखाना था ।’

उनके अतिरिक्त मातलपूर्ण हमी नहीं, शिवाराम शरण गुप्त,
कलम हमी, फावली पर पाण्डे, ज्ञान प्रदाय का, शिखर सास, मातल शिखरी,

गोपाल सिंह नेपाठी, जालकृष्ण राव, हरिकृष्ण प्रभो, बळक, व्यास, मोहन बापि
तुली जीती के बाप के प्रसन्न गीत कार हैं।

आ विवेक से यह स्पष्ट है कि बीतवीं सदी में तुली जीती के
पद के साथ साथ सुन्दर व एकल गीतों की रचना भी हुई। प्रभाव एवं पन्त ने सीमलता
नारा भाषा की सुशुद्ध किया, फलतः तुली जीती में माधुर्य एवं लोकतन्त्र का पतापदी
का बाव न रहा। भावी की गहराई के साथ साथ कविता सामिनी की रूप बनाया
एवं बहारा गया। वाक्य गहन अत्यन्त वाक्यार्थ व हुआ। महादेवी ने गम्भीर कृपति
के साथ अन्य प्राप्त उपादानों के योग से गीतों के सुष्ट रूप का निर्माण किया। वर्णन
में मानसिक पक्ष का प्राधान्य था। लोकतुली व प्रतीकात्मक पक्षित गीतों में उपलब्ध रस
के आधारणीकरण में अत्यन्त उत्साह व एकल हुआ। व्यंग्य भी हुआ सी। काव्य में
रस उदा अन्य सीता है, वाक्य नहीं। कृपति का अपरीक्षा वर्णन ही रस निष्पत्ति में
उत्पादक सीता है। यही एकलता अकलता का साहित्यिक मापदण्ड है और यही तथ्य
पर हिन्दी गीतों का भविष्य निर्भर है।

तुली जीती का नव साहित्य-

हिन्दू समाज का संकट यह कि प्रकार से हुआ है कि बाहर की
नवीन भाषा का प्रभाव सीता के वास्तविक परिणामी जीवन में सीता प्रसन्न नहीं कर पाता।
यही परिणामस्वरूप सांसारिक वाक्यकार्थी की प्रेरणा है वही बाहरी जीवन में
हिन्दुओं ने ऊर्ध्व की बना सी दिया पर उनके घरों की पक्षि सीता के भीतर यह
विषयी सी भाषा प्रसन्न न कर पायी। घरों में प्रान्तीय भाषा का ही प्रयोग सीता
रहा। यही कारण हिन्दी के प्रारम्भिक नव प्रतिष्ठापकों के सम्मुख यह कठिन समस्या

उपरिष्ठ हुए कि जिस वापसी को लेकर जाने पड़ा जाय। राजा लक्ष्मण सिंह ने विदेशी शब्दों की बजाते हुए एक परिष्कृत देशी शैली का संकेत दिया। भारतीय परिष्कृत ने भी उसी वापसी पर जाने पड़ना कमीचीन समझा पर उन्होंने किसी शब्दों के उक्त परिवर्तन की अपनी आवश्यकता नहीं समझी, जिससे बाहर के राजा बाह्य समझते थे। भारतीय ने ही बली फारसी के शब्दों का उदा प्रयोग किया, जो हमारी भाषा में प्रचलित हुए थे। उनके विपरिक्त उन्होंने संस्कृत के शब्द भी अपनी भाषा में रखे। जो संस्कृत के शब्द तत्काल रूप में हमारी भाषा में प्रयुक्त होते जाते थे, उन्हें तत्काल रूप में प्रयुक्त करता उन्होंने उचित नहीं समझा।

कामाख्या के गव का कल्प ऐसा प्रतीत होता है कि हम वही भी नहीं पूछा था, क्योंकि उक्त रूप और स्वरूप कल्प के समय भी जितना बच्चा था उतना गव भी नहीं रहा। कल्प के सुरुप्त पश्चात् ही जिसके बीज का उद्भव जाग्रत हो गया हो, यदि वह उसके लिए न तो बाला का विषय हो जाता है और न उर्ध्व का। कल्प है ही सम्पूर्ण यह साहित्य सिद्ध। प्रभावना गया। अधिक दिनों तक जीवित न रह सका। का माया गव के उद्भव से वही जीसी गव की पड़ा गत मिला। जो ही कारण है किन्हीं सही जीसी गव के मृत तो साहित्य में गहर प्रतिष्ठित कर दिए थे और कामाख्या गव का सुतीर्ण कर दिया।

१- सही जीसी गव सुगमगुप्त था।

२- तत्कालीन मुसलमान राजाओं ने सामय देकर उक्त पाता पोषण किया।

सही जीसी गव का साहित्य बीच में कालक गिरफ्त नहीं हुआ था। वह बहुत पुराने है शक्ति संभव १५०० ई. करने में लाया हुआ था। गव कवि की

‘कंद हंस मस्तक स्त्री मणिमा’ सही नीली गव की बादि पुस्तक है। यह पुस्तक के गव का उदाहरण यह स्पष्ट कर देता है कि विकास के केंद्र उसी प्रारम्भ से ही वर्तमान हैं। यह पुस्तक से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सही नीली गव की क्यमाणा गव की वाक्य रचना तथा छंदों में मौलिक अन्तर है। क्यमाणा वाक्यरचना पक्ष पर संस्कृत से अन्तर छंदों से और सही नीली उर्दू से। सुवर्तमान वाक्यशास्त्र सही नीली की अपनी कृत्यस्य पाकर उसमें वर्णों का रसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग करते हैं। गव में अपनी यही छंदों की विशिष्टता के कारण यह ‘उर्दू’ नाम से अभिहित हुई। यह छंदों का अनुसृत होना कि सही नीली की सुवर्तमान की वाक्य छंदों से। वह ही यही की उत्पत्ति ही प्राचीन नीली थी, जिसमें क्यमाणा बादि अन्य माणाई थी। सही नीली का वाक्यशास्त्र रूप वर्णों में भिन्नता है :-

‘मस्तक हंस ग माहिरा मणिमा मारा का ।

उत्पत्ति ग कर्मा बादि जय मणा पर कर्मा ॥”

‘मस्तक’ हंस ‘माहिरा’ बादि अन्य वाक्यशास्त्र सही नीली के प्रयोग हैं। सही नीली के अनेक माहिरा माणाई में उत्पत्ति ही गवरी हैं, जिसमें कर्मा क्यमाणा या अन्य किसी माणा है।

‘कंद माट’ की पुस्तक के प्रकाशक वर्ष १९६८ में सही नीली गव छंदों राम प्रसाद मिस्त्री की ‘माणा योग वाक्यशास्त्र’ लिखी है। यह पुस्तक की माणा सही नीली का कर्मा ही उत्पत्ति रूप प्रस्तुत करती है तथा उसी सही नीली की वाक्यशास्त्र प्राप्ति पर प्रकाश प्रकाश है। इसी माणा छंदों का अत्यन्त वाक्यशास्त्र रूप प्रस्तुत करती है। वर्ष १९६८ में सही नीली गव का यह रूप प्राप्ति, परिष्कृत तथा वाक्यशास्त्र है।

उन्हीं परचास ५० डॉक्टरों द्वारा संवत् १८१८ में परिष्काराचार्य के लेख परचुराण का ७०० पृष्ठों में बिना हुआ अनुवाद निकला था। अन्ततः सन् १८५० में लड़ी जीती के गवर्नर 'गीता नायक की माता' नामक पुस्तक लिखी।

जो प्रारम्भिक लड़ी जीती रचनाओं के पूर्व की राजस्थानी मिश्रित लड़ी जीती की कुछ रचनाओं का पता चलता है किन्हीं में प्रस्तुत हैं :- 'मंतीर का वर्णन' १९०० संवत् ।

२- 'कल्या की पातलादी की परम्परा' किन्हीं अज्ञात लेखक द्वारा संवत् १८१० के लगभग लिखित ।

३- 'सूतम्बी सावित्रा की रीति' - संवत् १८४० के पूर्व ।

उनके अतिरिक्त अनेक लोग जो भारतवर्ष में वापस लौट कर आये उनके परिवार के लिए एक भाषा की आवश्यकता पड़ी। इसके लिए उन्होंने हिन्दी की उपयुक्त भाषा और 'मराठी' का संवत् १८५५ के में हिन्दी में अनुवाद कराया। अनेकों द्वारा अनेकों की फिर वह पाप का प्रायश्चित्त उन्होंने हिन्दी प्रचार के मुख्य कार्य में किया। उनके अतिरिक्त अनेकों द्वारा पुस्तकें और पत्रिकाएं बनाकर निकलीं रहीं।

लड़ी जीती गवर्नर की एक मिश्रित और अवशिष्ट रूप की वापस चार वाच्य मान जाती हैं - १- उदा सुलभा २- आचरता तां ३- उदाहरण ४- अन्त फल ।

अनुवाद-

१८०१-०२ - ये दिखती हैं रही वापस थे। ये वापस प्रगति के

जाति था। कन्या से जहाँ मजदूर साहित्य अधिक है कि उन्होंने लिखा किती के वाक्य में ही ही स्वतन्त्र रूप से हिन्दी रकार की। वह कन्याने भीमसागर का हिन्दी में अनुवाद सुखागर नाम से किया। भाषा की दृष्टि से ये सभी काव्य के क्षेत्रों में सर्वप्रथम हैं। उनकी भाषा काशी के तत्कालीन शिष्ट समाज की सही जाती है। जहाँ उच्च के पुराने का के पण्डित लोग अब भी जाती हैं। उनकी हिन्दी रकार वाली फारसी के प्रभाव से मुक्त पंक्तिरूप लिखे हुए हैं।

स्थापकता का-

ये उर्दू के प्रमुख प्रसिद्ध शायर थे। कई शायरी परम्पराओं में रहे। संवत् १२२५ और १२६० के बीच कन्याने "उपमान बरिस" या "रानी केली" की कविता लिखी। "हिन्दी की वाली फारसी के प्रभाव से मुक्त रचना जाती थी। उनकी भाषा बटक बटक जाती मुहावरों पर चली है। उसमें उर्दू कवियों की ही तरह नहीं।

उसकी लाह-

१८२०-१८२२ ये शायर के रहने वाले मुबारकपुर काव्य थे। बाद में कन्याने के फोटो विविध काव्य में नाँवर ही गए काव्य के अन्तर्गत नाम गिजाएँ की वाक्य से कन्याने भाग्य का वस्तु रूप की रचना की तरह "इन शायर" नामक ग्रन्थ लिखा जिसका मुख्य आधार आनुवंशिक रूप वस्तु रूप का परानुवाद है जो अब में लिखा गया था। इसी कारण उनकी भाषा में इन भाषा का प्रभाव बहुत है। उसमें स्थान स्थान पर बुद्धिमान कहलती है। वाली फारसी के शब्दों का स्थान का परलप प्रयोग किया गया है। भाषा का जायों की ही है।

सबत मिम-

ये विचार निवाड़ी ये सबत सब की भाषा कन्हानि की फोट
विभिन्न भाषा के व्यक्तियों की प्रेरणा से हिन्दी गद्य में 'कन्हाणी' या
'नासिखीपाठमान' लिखा। उसी दौर 'इन चार' की भाषा में बड़ा बदल
है। ताक सुबरी न होने पर भी उसी भाषा व्यवहारयोगी है। उसमें कई सुबरी
की बचाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है। इन
भाषा के प्रयोग भी कई स्थानों पर बार हैं। उसी भाषा में सुबरी की स्पष्ट
फोट है।

ये चार सार बाधुनिक सुबरी नीली के जन्मदाता समझे जाते हैं।
उनमें मुन्ही सदासुखसाल और सबत मिम की भाषा बाधुनिक भाषा के अधिक निकट
है। उसी बाधुनिक गद्य का प्रमाणित मिलता है। सबत सब की भाषा कृत्रिमता पूर्ण
है। यह सदासुखसाल की भाषा काव्य रत्ना की कल्पनात्मक सुबरी नीली के इन चारों
बाधुनिकों के जन्मदाता राजा राम मोहन राय का नाम उल्लेखनीय है। कन्हानि सं० १८७२ के
जमाने केनास्त सब का हिन्दी अनुवाद लिखकर प्रकाशित कराया था। उनके लिखे हुए
हिन्दी गद्य के दौर में सब नई मिली है। भाषा पर काल और रावधानी का
प्रभाव पाया जाता है और वह पण्डितताका उर्ध्व की है। विषय वार्तनिकता के कारण
उसमें सत्य सुबरी की बसाव है। कन्हानि सं० १८८६ में 'कानूत' उपाचार पर भी
हिन्दी में प्रकाशित कराना प्रारम्भ कर दिया था।

सुबत मिम और सुबत-

कन्हानि सं० १८८३ के में कन्हानि है 'उपसमावेष्ट' नामक उपाचार

का निराशा की हिन्दी का एवं फ़सल समाचार का है। उनकी भाषा पर भी भाषा का प्रभाव है। उर्दू, कन्नड़ी शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है।

राजा लाल प्रसाद गितारि हिन्दी-

य हिन्दी के बड़े बड़े भारी कवी थे। उनके कविता से हिन्दी की संयुक्त प्रान्त के शिक्षा विभाग में स्थान मिला। उन्होंने सन् १९०२ में 'आर्य समाचार' नामक समाचार का निराशा ।

राजा लाल गीत-

उन्होंने राजा लाल प्रसाद की ऊँची से भारी हुई सैली का विरोध किया और विद्रोह सैली का पता छिद्र जाने बाध। उन्होंने सन् १९१८ में 'प्रसाद गीत' नामक फ़सल निराशा और कविता की वर्ष सन्तुष्ट का व्यापक विद्रोह हिन्दी में प्रकाशित कराया जिसमें ठंड शब्दों के साथ साथ सरल सरल शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

स्वामी ब्रह्मचर्य-

सन् १९३५ में अपनी मातृ भाषा हिन्दी में कविता हुई थी उन्होंने अपनी रचना हिन्दी में लिखी और अपनी कृतियों के लिए उनका फ़सल वावरण कर दिया। यही कारण है कि बाप पंथ के उर्दू के प्रचलन में भी हिन्दी का प्रचार है। स्वामी जी की सैली विद्रोह का। उन कविताओं एवं लेखों के जन्मदाता की सैली नीली वावरण की पारा सन् १९३५ में प्रकाशित होने लगी।

उन काल में कड़ी नीली गव की प्रचार भाषा की गली। वावरण

के प्रभाव साठ वर्षों तक पूर्व में जब ब्रह्मा प्राधान्य कायम रही पर तब में उही वर्षों से भी ब्रह्मत्व हीना पड़ा। बावजूद जब में ऐसा करने वाले विरहि ही मिलते हैं। सही नीती जब का मुख्य प्रचार शिक्षाओं द्वारा हुआ। सही नीती ने जो काल में ब्राह्मणिक उन्नति की जिसे कुछ ही समय पहले लोग एक गंवार नीती समझते थे। बाव यह समस्त भारतभर में ही राष्ट्र भाषा कायम है। संस्कृत, पञ्जाब, उत्तर, और बांग्ला देश प्रायः ही उन्नत हो गया है। जो काल के प्रचार में हिन्दी जब का पुनरुत्थान बड़े उत्साह के साथ हुआ। एक के बाद दूसरे लोक साहित्य में आए। जब सरिता बड़े पैमाने पर बहने लगी।

सही नीती जब में जब की प्रकाशित होती रही है। १९७५ तक 'संस्कृत' की ही भाषा रही। नयावा और भी भी बड़ी निकली। समाचार पत्रों में 'भारत मित्र' और 'प्रभात' का और भी। नवीन का में विकास भारत संस्कृति, विद्यार्थि, ऊँच, माधुरी, गंगा, बीणा आदि बड़ी बड़ी पत्रिकाएँ निकल रही हैं। बाजीका अन्तिम तथा ना० प्र० पत्रिका का साहित्यिक प्रगति की दृष्टि से विशेष महत्व है।

बाव प्रभात, कलम, नवसूत्र, विद्यार्थि, भारत, नयावा, अनुपमिका राष्ट्र बहुत बड़ी समाचार पत्र निकल रही हैं।

बाव हिन्दी साहित्य का खा कीर्ति का नहीं है जिस पर कि साहित्य जिता गया है। कथा, निबंध, नाटक, उपन्यास, स्तंभ, बीका, तथा बाजीका आदि के साहित्य से सही नीती का साहित्यपूर्ण विकास की पूर्ण गया है।

संस्कृत विभाग

संस्कृत भाषा की सही नीति के आकलन और का सुझाव देना

प्रस्तावना एवं तृती नीली के जगकरण स्पी का तुलनात्मक अध्ययन

भाषा विकास की दृष्टि से वास्तविक भारतीय वाच्य भाषाओं की प्रथम अवस्था ही ठहरती है। ग्यारहवीं सदी के अन्त तक अवकाश पुर्णतया साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण कर चुकी थी। ऐकवन्द के पूर्व ही अवकाश के कट्टर भाषा के बीच से अन्तः घटने तथा अन्य भाषाओं का उत्तम स्थान ग्रहण करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। ऐकवन्द की ग्रन्थ 'भाषा' का विस्तृत विवरण कट्टर भाषा की ओर संकेत करती है। ग्यारहवीं सदी के परार्ध में मुँव की भाषा का प्रमाण हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप के अति निकट है।

हिन्दी के विकास क्रम की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था का प्रारम्भ अवकाश के कट्टर भाषा के बीच से घट जाने के साथ हुआ। इसके उपरान्त विकसित हुई भाषा की अवस्था की संज्ञा प्रदान की गयी। इसके तीन प्रादेशिक रूप उपलब्ध होते हैं- पश्चिमी, मध्यमैतीय, पूर्वी अर्थात् पश्चिमी रूप का विकास गज में पश्चिमी राजस्थानी के रूप में हुआ। मध्यमैतीय रूप से ही प्राचीन भिन्न भाषा का विकास माना जाता है। यह भाषा धीरे धीरे उस रूप की सामान्य साहित्यिक भाषा हो गई थी। यह भाषा के साहित्यिक रूपों में वारण काव्यों एवं पाणिन तथा लौकिक काव्य ग्रन्थों में मिलती है। वारण काव्य अधिकतर भिन्न भाषा में लिखे गए हैं जिनका सम्बन्ध मुत्ता पश्चिमी अवकाश से माना जाता है। पश्चिमी अवकाश का दूसरा नाम सीरीनी अवकाश का दूसरा नाम सीरीनी अवकाश माना जाता है जिसका

विकास शीर्षकी प्राप्त है हुआ। वही परिवर्ती या शीर्षकी वक्रांत है परिवर्ती
हिन्दी। पंजाबी, मगध, लड़ी नीली क्रमाणा, मुन्दी। विकसित हुई वं-
वागवी वक्रांत है पूर्वी हिन्दी। वक्की, ज्विही, हरीकण्डी। का विकास हुआ। एक
ही शीर्षकी वक्रांत है विकसित हुई क्रमाणा एवं लड़ी नीली वीनी माणावी में
पर्याप्त है एवं साम्य है। यह एक वाक्य की बात है किन्तु उक्त प्रस्तुत कारण
कात्तन एवं प्रान्तीय प्रयोग विविध ही ठहरते हैं। वीनी माणावी के अति तत्प
एवं हम तत्प पर विचार करते हैं कि साम्य वंज्य नीली नीति स्पष्ट ही जाता है।
इस स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तुत व्याख्या में वीनी के व्याकरण रूपों का साम्य एवं
वंज्य की विस्तृत विविध प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

संक्षेप- प्राप्त वीर वक्रांत की अविवर्ती का विकास-क्रम-

जिस प्रकार भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है
उसी प्रकार भाषा की सभी जानकारी का माध्यम उस भाषा का व्याकरण
है। सामान्य रूप है व्याकरण के मुख्य तीन विभाग कि १९ हैं :-

१- वर्ण- विचार

२- शब्द साधन वीर

३- वाक्य विन्यास

वर्ण विचार व्याकरण का वह भाग है जिसमें अविवर्ती एवं उनके पैर व्याकरण तथा
उनकी मिलान की रीति का उल्लेख रहता है।

क्रमाणा एवं लड़ी नीली की अविवर्ती का उल्लेख करते हैं पूर्व

उनकी प्रत्यक्षी संस्कृत प्राकृत वीर वक्त्र की ध्वनियाँ पर विचार कर लेता आवश्यक है क्योंकि संस्कृत - प्राकृत एवं वक्त्र की ध्वनियाँ ही कव्याभाषा एवं सही नीती के ध्वनि समुह का आधार है।

ध्वनिक ध्वनियों की संख्या ध्वनिक वर्णानुसाराँ के अनुसार १२

१. इन ध्वनियों का वर्गीकरण इस प्रकार है-

१- मूल स्वर - अ, वा, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ वीर वृ

२- संयुक्त स्वर - ए।अ इ।आ। ओ।ऊ। ऐ। वा। औ। वाउ।

३- सहाय्य स्वरों केवल जिसकी स्थान भेदों के अनुसार पाँच वर्णों में विभाजित

किया जा सकता है-

अंत्य- क, ख, ग, घ ङ

तात्पञ्च- च, छ, ज, झ ञ

मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ ण

दन्त्य- त, थ, द, ध न

वीर्य - प, फ, ब, भ म

४- अन्त्य- ए।य। उ।स, व ऋ ऋ - इ।वा

५- उपोष्ण उष्ण- इ, ए, अ

विश्वनीय या विश्व :

विष्णुप्रातीय

उपध्वनीय

६- एक उपोष्ण उष्ण - इ

७- एक उष्ण उष्ण

य प्रकार १३ स्वर एवं ३६ व्यंजनों की मिलकर कुल वैदिक
 व्यंजनों ४३ हैं। डा० बीरेन्द्र काँ ने कुल वैदिक व्यंजनों की उच्चारण सम्बन्धी
 विशेषताओं का उल्लेख किया है। वैदिक काल में ऋ का उच्चारण वास्तव में माना
 गया है और उसे मुख्य स्वर माना गया है।

उ का प्राचीन वैदिक पाठों में केवल तु ए में ऋ स्वर का
 प्राचीन होता है। डा० सुनीति कुमार ऋषी ने तु के उच्चारण की सीधी सत्य
 है। के दूसरे उ के समान माना है।

२ और ती व्यंजनों वैदिक काल में संधि स्वर। ऋ। ऋ थे।
 संस्कृत में बाकर का उच्चारण दीर्घ तुल स्वरों की भाँति चँचि होता था।

वाह, वाउ का पूर्व रूप वैदिक काल में वत्त ही नर था। संस्कृत
 में काका वः, वः रूप वाप भी मिलता है। लड़ी नीली में २, ती ली वाते हैं।

३ की व्यंजनों का उच्चारण वाप की भाँति स्पष्ट संघर्षों
 न होकर केवल स्पष्ट ही था। प्रातिहार्यों के अनुसार तर्कों का स्थान वत्त या वत्त
 नहीं।

वैदिक काल में तुल स्वर ऋ, उ थे।

तु, ऋ व्यंजनों से ही ती स्वरों में जाने वाले प्रभावों एवं
 लड़ी नीली के तु, ऋ की उत्पत्ति हुई। अनुसार केवल तु, ऋ, तु, तु, तु, तु के
 पठते जाता था। स्पष्ट व्यंजनों के पूर्व जाने पर यह की अनुनासिक व्यंजन में परिवर्तित
 ही जाता था।

१- डा० बीरेन्द्र काँ - हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० ६३

२- डा० सुनीति कुमार ऋषी - वीरिन एण्ड डेवेलपमेंट वाप की ली संकेत पृ० १३०

जि. ६।

वृ के पक्ष के किरा का भ्रान्तर द्वितीय प्रतीय ।

एवं प के पक्ष के किरा का भ्रान्तर उपभ्रान्तीय कहलाता था। अतः

किं एवं पुनः पुनः न वं।

संस्कृत की ध्वनियाँ वृ वृ, की जोड़ कर वैदिक ध्वनियाँ रहीं।
उच्चारण की दृष्टि से कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया। क, एवं छ के उच्चारण
मूल स्वरों की भाँति न रहे। र, की का उच्चारण संस्कृत में मूल स्वरों की भाँति
ही रहा। वैदिक ध्वनि वं संस्कृत में बाकर वन्त्योष्ठ्य वृ तथा त्र्योष्ठ्य व न
बीर व वृ एवं वृ रूप की धारण कर लिया।

पाणि तथा प्राकृत ध्वनि अनुव

संस्कृत की ध्वनि सम्पत्ति पाणि एवं प्राकृत भाषाओं की
उपराधिकार में प्राप्त हुई परन्तु बहुत सी ध्वनियाँ वहाँ पहुँचती पहुँचती कुछ प्रायः
ही नहीं।

पाणि भाषा-

पाणि भाषा में वर स्वर - व वा क ई उ ऊ ए ऐ ओ औ-
पाए जाते हैं। क, ख, ऐ ओ का प्रयोग पाणि भाषा में नहीं होता। ऐ ओ के
स्थान में ए ओ अ से ही जाते हैं। पाणि भाषा में ही नर स्वरों का आगम हुआ-
ए ओ इत्य ऐ औ ।

पाणि में वृ, वृ के स्थान पर व का प्रयोग होता है। शेष ध्वनियाँ

भाति में संस्कृत की तरह ही है।

प्राकृत भाषाओं का ध्वनि समूह पाती की तरह ही है। उसमें
अ, वीर किरा का प्रयोग नहीं होता।

----- व्यंजित ध्वनि समूह- -----

संस्कृत प्राकृत- पाती की भाँति व्यंजित का भी ध्वनि समूह
परम्परा से प्राप्त हुआ। व्यंजित प्राकृत की सभी ध्वनियाँ विद्यमान रही। व्यंजित
में निम्नलिखित स्वर वीर अंका ध्वनियाँ मिलती हैं :-

स्वर ध्वनियाँ-

इस्व- अ, इ, उ, ए, औ

दीर्घ- आ, ई, ऊ, ए, औ

अंका ध्वनियाँ-

क ख ग घ ङ

च छ ज क तात्तव्य

ट ठ ड ढ धूय

त थ द ध न वन्त्य

प फ ब भ म वीर्य

य र ल व वन्त्य

स ह ज्ञ

ह का प्रयोग पूर्ण व्यंजित में मिलता है। संस्कृत, प्राकृत तथा

वर्णमाला में जो ध्वनि है वह इस प्रकार है :- स्वर - विकार संस्कृत के क, ख और जो ध्वनि है अन्तिम तीन स्वरों वर्णमाला में भिन्नभूत व्यवहार नहीं होता क का विकृत रूप है व्यवहार होता है। इन स्वरों के स्थान में भिन्न विकार होते हैं :-

क सु - क और 'कसि' कसुम्भ - किन्नी किस्मिया ।

ख ए - ख, ए, खड

ख - खपरक - खर क

ख - खव - खव

ख - खव -- खख

ग जी - जी - खड

जी - जीवन - जीव्यजी जी - गौरी - गौरी

खड - पौर - पौर गौरी - गौरी

घ - क - व - तुण - तण्डु पुष्ट - पट्टि

उ - पुष्ट - पुष्टि

व, वा -- वृत्त - वृत्त, वृत्त

ए गुरु - गुरु

री, रि -- रीह - रीह, रीह - रीह

क - कसु - कसु - कसु - कसु

१- संस्कृत में इत्य 'ख' और 'जी' का प्रयोग नहीं हुआ है। प्राकृत एवं अपभ्रंश जी यह निजी वस्तु है।

" तस्य चर्त कसि पुनि पुस्तकही । "

" पुनि विनित्तपत्रक माण्ड । " १

२- पद के अन्त में लिखा उ, हु, धि और ई का भी उस उच्चारण होता है :

क- कन्तु तु तुम्हें लहे कहे ।

ख- कन्तु पटावत बणि तल्लु ।

ग- तजार्हु तज्जो पाणि नवि । १

अन्य रसांशित शब्दों का इस उच्चारण ही हुआ है। उनके स्थान हिन्दी में इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

कै - खस - कसा

खानार - सुनार

वैदिक और लौकिक संस्कृत में इस स्वर और वी कार का प्रयोग नहीं होता, अफगानिस्तान से लेकर सरस्वती के मुखा होने के प्रवेश तक की नीलियों के विषय में यह बात ध्यान भी लागू होती है। परन्तु प्राकृत से लेकर अन्य पूर्वी नीलियों में 'ह' वी का परापर प्रयोग होता वा रहा है। वैद नागरी वर्ण माला में उनके लिए पुष्प लिपि-लिख नहीं है। अब वादि नीलियों में असा प्रयोग होता है।

स्वीडिश भाषारान्त केरान्त शब्दों की इस कले की अवस्था की सामान्य प्रवृत्ति है-

हीता - हीय

हरीतिही - हरत

प्राकृत और अवस्था में अन्तर-

प्राकृतों के अन्तर, विकास होने पर भी अपनी विशेषताओं के

कारण व्यंजन एक स्वतंत्र पाया है। प्राकृतों की पुनः प्रगति कं वीं कारान्त होती है। वीं रकारान्त। पूर्वी प्राकृत। है। जबकि व्यंजन की प्रगति उकारान्त है। स्त्रीलिङ्ग इस उकार बहुत बड़ा गया है। इस में स्त्रीलिङ्ग का वीं कारान्त रूप का भी सुरक्षित है, स्त्री प्रकार पागपी रकारान्त रूप पूर्वी स्त्रीलिङ्ग में है। जम्भावा प्रदेस में बलीगढ़ के साथ पास जाय भी भीड़ रूप प्रकृति है। व्यंजन में उकारान्त प्रगति के भी प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्राकृतों से व्यंजन में स्थायित्व का भी भेद है, प्राकृतों में विभक्तियों के साथ बिछे हैं, इतने व्यंजन में नहीं हैं। इस पाली में जम्भावा के लघुवर्ण के लिङ्ग 'देवात्' और 'देवमात्' रूप होते हैं किन्तु व्यंजन में 'देववी' और 'देवहू'। यह व्यंजन के नर विभक्ति बिछे हैं।

व्यंजन वाचु रूपों की भी कमी विशेषताएं हैं। प्राकृतों में तिङन्त क्रिया के रूप हैं, व्यंजन के सामान्य भूत में भूतभूत का प्रयोग होता है, चतुष्ठा, कर्त्तृत्वादि के रूप प्राप्त होते हैं। कतिमान काल में तिङन्त और भूत दोनों रूप पड़ते हैं। जहाँ संस्कृत में वाता और विधि के रूपों में भेद है वहाँ व्यंजन में यह बात नहीं है। 'क्रिया' का 'कीदृ' वाक्य और संस्कृत के लघुवर्ण का लघुवर्ण रूप व्यंजन की कमी विशेषता है।

प्राकृत की प्रगति की कमी के साथ साथ व्यंजन में कमी की नई प्रगति की जन्म दिया इन कमी नवीन विशेषताओं के कारण ही व्यंजन प्राकृत से निम्न प्रतीत होने लगी। उसकी ये विशेषताएं डा० जय नारायण तिवारी के अनुसार ये हैं :-

१- लिङ्ग भेद की मिटाकर शब्द रूपों की व्यापक धरत कर दिया।

१- डा० जय नारायण तिवारी - हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ० १३७

- २- अपभ्रंश ने ' तिष्ठन्ति स्पर्श' को घीमित कर कुम्भन्त स्पर्श का व्यवहार बढ़ाया ।
- ३- अपभ्रंश ने विभक्तियों के लीप के कारण वाक्य में बाधे हुए अस्पष्टता को दूर करने के लिए चरणों का प्रयोग किया।
- ४- अपभ्रंश ने वेश्म हज्जों एवं पातुजों की प्रचुर मात्रा में अपनाया और वेश्म हज्जों के प्रवृत्ति स्पर्श का भी प्रयोग किया। जहाँ कारणों से अपभ्रंश प्राकृत वादि से भिन्न हो गई ।

हिन्दी ध्वनियाँ

सही गीती एवं व्यवस्था-

ध्वनि की वर्ण भी करते हैं। वर्ण वह सव्य ध्वनि है जिसके लण्ड न फिर जा सके। वी - व, ङ, प, फ ।

वर्णों के बी भेद हैं। स्वर तथा व्यंजन ।

स्वर-

स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण बिना किसी की सहायता के स्वतंत्रता से होता है तथा जिनकी सहायता व्यंजन में अपेक्षित है। हिन्दी में ११ स्वर हैं।

अ, इ, उ, ऋ, ए पुरुष स्वर हैं ।

आ, ई, औ, ए, ऐ, ओ, औ वीर्य स्वर हैं।

व्यंजन-

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनकी उच्चारण स्वरों की सहायता से होता है इनकी संख्या तीस (33) है।

क ख ग घ	हृदय
च छ ज झ	तालुका
ट ठ ड ढ	गुह्य
त थ द ध	दन्त
प फ ब भ	वीर्य
य र ल व	वन्त
श ष स ह	ऊर्ध्व

सड़ी नीली में कुछ वर्ण संस्कृत सत्तम शब्दों में प्रयुक्त होते हैं वे हैं - क, ण, ञ । कण, कण्ठ, कणि । पुरुष, माषा, पीषण, रण, गण, कण, वादि ।

उ वीर ज पुष्प रूप से केवल संस्कृत शब्दों में वाते हैं। वे हैं कण्ठ, मयकण्ठ, वर, व वल, पुष्प, कृष्ण वादि ।

संस्कृत व्यंजनों में ऐ वा वीर व केवल संस्कृत शब्दों में वाते हैं। वे हैं- मोषा, दावो, दाण, ज्ञाता, ज्ञान, संज्ञा वादि ।

उ, ज, ण हिन्दी में शब्दों के वादि में नहीं वाते । अनुस्वार एवं विसर्ग भी शब्दों के वादि में प्रयुक्त नहीं होते -

विसर्ग का प्रयोग सड़ी नीली के कुछ शब्दों में ही होता है-
वः, शिः, ज्ञाः, रक्षाः, वस्तुतः वादि ।

ज्वालाभा का ध्वनि समुह

ज्वालाभा में प्रयुक्त ध्वनियाँ सही गीतों की ध्वनियाँ से ही मिलती जुलती हैं।

ज्वालाभा की सामान्य ध्वनियाँ निम्नलिखित हैं :-

मूल स्वर- क, ख, ग, घ, ङ, च, छ ।

ए, ऐ, ओ, औ, ई - ए । व ए । ओ । व ओ ।

उदाहरण-

क ख ग घ	क्येय
च छ ज झ	तावय्य
ज-व-ज-व	जुय्य
ट ठ ड ढ	पुठय्य
त थ द ध	दय्य
प फ ब भ	बीय्य

ह, ङ, ञ, ण, न, म, य, र, ल, वीर, कुम्हार

ये ज्वालाभा ध्वनियाँ हैं।

य, र, ल, व, वीर, कुम्हार

ह, ङ, ञ, ण, न, म, य, र, ल, वीर, कुम्हार

नयी ध्वनियाँ ह, ङ

मूल स्वर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ए, ऐ, ओ, औ, ई

उच्चारण का भाषा में लिखी की कल्प नीतियों के ही समान है।

क का प्रयोग का भाषा में लिखा गया है की तरह होता है की लिखा, लिखे लिखी आदि। परन्तु प्रसारण की आदि कवियों के काव्य में ऐसी लीक उच्चारण मिल जाती है जिसे कि "क" कभी कुछ रूप में पुराणित है। क्यु, क्य आदि। तथा इसके प्रयोग उन्हीं के काव्य में कुमा, कुड, कुग आदि शब्दों में मिल जाते हैं।

सभी स्वरों के लघुकारित प्रयोग का भाषा में मिल जाते हैं।

क्या कि पठति क्या गया है का भाषा में चार विशेष मूल स्वर हैं। ए, ओ ए, वा हैं।

उनका प्रयोग प्राचीन काव्य में मिली है। स्वरों के साधुनायिक रूप भी का भाषा कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

व - पर एतत्तु भी काव्य मल हुनन काव्य पार। पुर०

वी - वी कवियों कवियों लिखि राखी है नर काव्य कवी।

ह -

उ -

ऊ - ऊर्ध्व चापमान कि पाह। पुर

ए - ऐक्य काव्य नन्द की कविता।

ऐ - ऐन कुमा की छे दीन पर।

ई - काव्य मल की चार चार काव्य रे गदिया।

बी - बीकी क्या कवति नन्दरानी।

वीं- वीं ही वीं वृद्धि तत्त कामी ।

वीं -

वीं - वीं हरि कथा सुनी पित्त लाव ।

स्वरी के संयुक्त प्रयोग भी व्यवहारा कथियां हैं फिर हैं। तही
भीती की भांति क्व में भी कई स्वरी के संयुक्त रूपों का व्यवहार किया जाता है।
जिन प्रकृता कुछ ही स्वरी की हैं। वीं ती क्व भाषा में परस्पर संगीत से कीक
संयुक्त रूप बन जाती हैं। जिन प्रकृत ये हैं :-

वह, वहु, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ ।

वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ ।

वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ, वृ ।

वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं ।

वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं, वीं ।

अनि सम्बन्धी साम्य वैयाकरण

अनि लीर क्व माया-

तही नीली के लान प्रयुक्त होने वाली क्व माया में ये अक्षर हैं :- क ह ग घ ङ ञ क टठड्ड तपथ न प क न म न स ह वीर ड। इस वर्ण वर्ग में ही हैं जिनका दोनों नीलियों में कुछ अन्तर है ड - ठ का प्रयोग तही नीली हिन्दी एवं क्व माया में नहीं होता, हिन्दी में हव्यों के बीच में कसय संस्कृत के तत्सम हव्यों में प्रयुक्त होता है- यथा प थ , का परन्तु क्वमाया में इसके स्थान पर ठ के स्थान पर क्खवार का प्रयोग होता है यथा - फाँ, गंगा, नंगा, फेन आदि ।

व - य वर्ग तही नीली में ' य ' का प्रयोग होता है यहाँ हव्यों के आदि में क्व में ' व ' का प्रयोग है मिलता है। जैसे तही नीली यत्, वत्, यीथा, यात्ता, रत्न - वत्त - वत्, जीथा, जात्ता, वत्त । हव्यों के मध्य में भी तही नीली के ' य ' का क्वमाया में ' व ' ही जाता है।

दुयधिक, संयोग - दुयधिक, संयोग

परन्तु इसके अन्वय भी पाए जाते हैं जैसे - मास्ती का मास्ती नहीं होता वीर न विनीग का विनीग ही ।

व- क्वमाया में तही नीली के व का प्रयोग कभी नहीं होता जैसे- वा

एवं ना ही जगह क्व माया में साथ ही नाँव प्रयुक्त होता है । तथा तही नीली के व वत्त, व वात्त, वु व, वु व तादि के स्थान में क्वमाया में वंत्त, वंवात्त, वुं वीर वुं वी जाते हैं। यथा क्खवार ही जाता है।

ण- लड़ी नीली के 'ण' की जाह अधिकतर कम माना शब्दों में 'न' ही जाता है।

कण, रण, गणिका, पुराण, सरणागत, दर्पण आदि शब्द क्रमाणा में क्रमशः कन, रन, गनिका, पुरान, सरणागत दर्पन आदि हो जाती हैं।

परन्तु कहीं कहीं अपवाद भी मिलती हैं। मूर सागर में कहीं कहीं कारण, किष्कणी /ft शब्द मिल जाते हैं।

न-वीर व - लड़ी नीली का व कम माना में प्रायः नंद लिखा जाता है विशेषकर शब्द के आदि का व ती कम माना में 'व' ही हो जाता है परन्तु शब्द के मध्य में जाने प्रायः 'व' की भी अधिकताः 'व' ही लिखा जाता है।

कव, क्वाप, कन, कु, क्वाता आदि लड़ी नीली के शब्दों के कम माना में क्रमशः क्वाप, कन, कु, क्वाता आदि हो जाती हैं।

र वीर उ- लड़ी नीली के शब्दांश उ की क्रमाणा में 'र' में बदल दिया जाता है। क्रमाणा शब्दों में कभी प्रचुर उदाहरण मिलती हैं।

वै- लड़ी नीली के शब्द वर, वैरा, वरार, कारा, वैरा-वार, नवर, वार, वीरार, आदि क्रमाणा में क्रमशः वर, वैरा, वरार, कारा, वैरा-वार, नवर, वार वीरार आदि शब्द बन ही जाती हैं।

स, न वीर उ - कम माना में लड़ी नीली की ऊष्ण शक्तियाँ स, न, स तीनों के स्थान पर अपाठ, तातव्य स, पुष्टव्य न तथा वन्त्य स के स्थान पर एक वन्त्य 'स' ही अधिक लिखा जाता है।

वै- सुसीभित, सुस, नस, नदीस, वस, नवस, सस, सस आदि लड़ी नीली के शब्दों का कम माना में क्रमशः सुसीभित,

कुशल, महेय, कादीय, दरम, गपत, सस्त्र, सस वादि रूप ही जाता है।

कक्षिण, पिक्षिण, भेष, शेषनाग वादि लड़ी नीली के शब्द
 क्व भाषा में कक्षि, पिक्षि, भेष, शेषनाग वादि लिखे जाते हैं। परन्तु यह नियम
 पूर्णतया लागू नहीं होता क्योंकि क्वभाषा कवियों ने इस स्वप्न के तत्सम रूपों का
 प्रयोग किया है- कक्षि, पिक्षि, भिक्षान, सक्षि तथा भेष कुण्डल, वषा, भेषव,
 पिषय वादि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

हु- ही अन्ति लड़ी नीली की वषा निजी सम्पत्ति है। कुछ स्थानों के अतिरिक्त
 क्वभाषा में लड़ी लक्ष्मी स्थान पर 'र' का प्रयोग हुआ है- लड़ी नीली के कछड़ी,
 पछा, बीछी, फछीछी, लछी, लछाई का क्वभाषा में कछः - कछरी, पछा, बीछी,
 फछरी, लछरी, लछाई वादि हो जाते हैं। परन्तु कुछ शब्दों में यह 'ड' अन्ति वषा
 मूल रूप में ही क्वभाषा में प्रयुक्त हुई है- गछि, गारुछी, बछि, छाछी, उछि,
 लाछिली वादि शब्द मिलते हैं।

म्ह, म्ह, रह, वीर रह-

इन संयुक्त अन्तियों का प्रयोग लड़ी नीली में भी कम प्रयोग हुआ।
 प्रथम दो का प्रयोग तो उन्हें तुम्हें तथा बूढ़ाही वादि शब्दों में किया जाता है परन्तु
 अन्तिम दो का नहीं। किन्तु क्व भाषा में वादि दो का अधिकारित रूप में स्व अन्तिम
 दो का वांछित रूप में प्रयोग हुआ है- वीर- कान्ध, बीम्हा, बीम्हा, म्हाउ, लीम्ह,
 तुम्हारी, म्हारी, सम्भारति, काछि वादि प्रयोग मिलते हैं।

लड़ी नीली के संयुक्ताक्षर अ, वा, श, व, रूप, द, छ, द,
 म्हा, म्ह, छ, व, द, छ का प्रयोग क्व भाषा में नहीं होता। क्व भाषा में

किसी सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण उनके स्थान पर तत्सम शब्दों के अपभ्रंशों की पूर्ण कही अक्षररूप रूप में लिख जाते हैं या उनकी मिली जुली परत ध्वनि होती है। अकार भी अकारों का प्रयोग किया जाता है -

जहाँ लड़ी नीली में उक्त, जमा, जण, जत्री, जीव प्रयुक्त होती हैं जहाँ जमाणा में उक्त, जमा, जन, जमी, जेत शब्दों का प्रयोग होता है। तथा ज की जगह ज्ञ का प्रयोग भी जब माया कवियों की कृतियों में पाया जाता है जैसे- जकार, जूता, जमी, रता के लिए जब माया में जकार, जूता, जमी, तथा रजा शब्द प्रयुक्त मिलते हैं।

लड़ी नीली के संयुक्त अकार ज के स्थान में जमाणा में ज, ग, ज्ञ प्रयुक्त होते हैं - ज्ञान शिरोमणि, ज्ञानशिरोमणि, ज्ञा, जाग तथा ज्ञा, ज्ञया, प्रतिज्ञा - प्रतिज्ञा आदि। लड़ी नीली के ज संयुक्ताकारों का प्रयोग जमाणा में पाया भी जाता है- जैसे - बाणका, मुक्ति, लू, पात्र, पात्र, जल, पत्नी, लू, मुक्ति, उदार, उक्त, उवाग तथापि, जि, ज्ञ, पुस्तक, मुक्ति, ज्ञ, ज्ञिष्ठ, मुक्त, वशिष्ठ, विष्ठ, विष्ठ, ज्ञ, ज्ञा, गङ्गा, रती, लड़ी, विष्ठल आदि शब्दों का प्राचीन ज माया के कवियों में बहुत पाया जाता है।

लड़ी नीली एवं ज माया के स्वर एवं व्यंजन सम्बन्धी कुछ अन्य परिवर्तन हैं :- जैसे- लड़ी नीली के ग, घ, ङ, व, ब, व के स्थान पर कहीं कहीं जमाणा में क, ड, ङ, ङ, क ड, की भी जाती है जैसे-

लीन- नाम, बायु, उपाय, न्याय, पाय, पाय, जकार, आदि के स्थान में जमाणा में ज्ञाः लीन, नाड, बाड, उपाड, न्याड, पाड, पाड, पाड,

बीधर ही जाती है ।

उसी यह स्पष्ट है कि जब भाषा का प्रकाश अपनी सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण व्यंजनों की व्यंजना स्वरों की ओर अधिक रहा है। यही कारण है कि अपनी व्यंजनात्त कीमती स्वर सरलीकरण की भाव रखने के लिए लड़ी नीली के प्रवृत्ति है व्यंजनों स्वर संयुक्ताक्षरों के स्थान पर स्वरों स्वर संयुक्ताक्षरों का प्रयोग किया है। प्रभाषा स्वर लड़ी नीली के ध्वनि तत्व के विश्लेषण है यह निष्कर्ष निकला है कि एक ही भाषा की वंश की भाषाओं के ध्वनि तत्वों का अंतर है यह स्थान में स्वर व्यंजनात्त कारणों है है।

प्रभाषा और लड़ी नीली में ध्वनि संयुक्ती साम्य वंश

का प्रकार है :-

एक ही पश्चिमी हिन्दी की वंश भाषाओं के कारण प्रभाषा और लड़ी नीली में पूर्वी हिन्दी की व्यंजनात्त काफी साम्य है।

उच्चारण की दृष्टि है लड़ी नीली और प्रभाषा में वंश स्वर साम्य नहीं जाती। वंश " उ " के पश्चात् " वा " का उच्चारण प्रभाषा स्वर लड़ी नीली दोनों में नहीं होता, बल्कि ध्वनि ही जाती है वंश पूर्वी हिन्दी में प्रवृत्ति हृन्ध विचार, पियारी, पियारी वादि के स्थान पर वंश दोनों नीलियों में स्वार, प्यारी, प्यारी स्वर ही जाती है। यही प्रकार उ के भाव " वा " का उच्चारण नहीं होता। पूर्वी भाषाओं के कुवार, कुवार, प्रभाषा और लड़ी नीली में वंश और प्यार ही जाती है-

" वंश क्वाट की नद रीके । " वंश वंश वंश प्र० ६२६ वंश प्र० २६२

‘ गाव रही है गार पर का कुम्हरी । सही नीली

‘ व’ और ‘ वा’ के गाव ‘ व’ के स्थान पर ‘ य’ ही जाता है जैसे गाव, पाव, जाव बापि के स्थान पर दोनों नीलियों में साय, पाय, जाय ही जाता है।

दोनों नीलियों में तर्क प्रत्यय की क्रिया के कर्ता के साय, पाय का फल होता है। दोनों की रत्ताओं के अनुपसर्ग का रूप बदल जाता है जैसे नीली रूप रत्ता का कर्ता: यदि और चरितों रूप ही जाता है।

जब और सही नीली में + ‘ गा’ का कृष्ण रूप कर्मान है जिसमें रत्ता का होता है जैसे जब में पावनी, सही नीली में सायनी बापि ।

वर्ण भेद- कर्मात्मा और सही नीली में प्रथम प्रत्ययपूर्ण भेद वर्णों का है -
 वर्ण सही नीली में व, जा, य, ल, व तथा वाणिज्य स, पा, और न बापि हैं वर्ण कर्मात्मा में उनके स्थान पर कर्ता: र, न, ज, र, न, स, व और रि ही बापि हैं -

सही नीली

पड़ा, सड़ा, लड़ा
 रण, गुण, फण, लण, तण
 यल, यलुता, यलमान
 काला, पीला, पीपल, वाला
 पिरीय, लसिका, बापि
 नापला, नापुल, नान
 सरण, सील, सीला सेन

जब पाजा

पहली, सही, लयी
 रल, गुल, फल, लल, तल
 यल, यलुता, यलमान
 काली, पीली, पीपर, वाली
 पिरीय, लसिका, बापि
 नापला, नापुल, नान
 एस, सील, सीला, सेन

छड़ी नीली

कहाँ - न, न

कर्म- की

करण- से

सम्प्रदान - की

कामदान- से

उपनिष- सा, की, के

वधिकरण- वें, पर

कामापा

न

की, की, की, की, वू, वू, वि, की

से, सी, सी, से, से

की, की, की, की, वू, वू, वि

से, सी, सी, से, से

की, की, के, के, के, के, की

वें, वें, नी, व, पर, नाहि, नाहि

की, नाहि ।

कारक - विभक्ति

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के दूसरे शब्द वा क्रिया के साथ प्रकट किया जाता है। उसे कारक कहते हैं।

संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध क्रिया वा दूसरे शब्द से ज्ञान के लिए उसके साथ की वृत्ति बधाए बिना लाया जाता है उसे विभक्ति कहते हैं - की, को, से, का मैं, पर, मे ।

सही नीली स्व क्रमाणा दोनों में कारकों की संख्या बाठ हो है।

कारक एवं विभक्ति बिना दोनों भाषाओं के ये प्रकार हैं :-

कारक	सही नीली विभक्ति	क्रमाणा विभक्ति
कर्ता	मैं	मैं, मे, मैं
कर्म	को	हूँ, हूँ, को, को, को को
करण	से	तैं, तैं, तैं, पर, मे, मे, से सोती, तो हो ।
सम्प्रदान	को	हूँ, हूँ, को, को, को, को
व्यप्राधान	से	तैं तैं, तैं, तो, तो
सम्बन्ध-	का, को, के	कि, को, के, के, के, को, को को ।
वधिकरण-	पर, पर	पर, मे, मकर, मकरियाँ, मर, मरक, मरि, मर मे, मे ।
सम्बोधन-	जो, कौ, वर, कौ, है	वर, कौ, तैं, तैं, हो

जब कभी कभी विभक्तियों के प्रयोग दोनों भाषाओं के साहित्य में जसा प्रचुर मिलती हैं। लोपाएरण विधान की आवश्यकता नहीं।

कहीं कहीं विभक्तियों के स्थान पर सम्बन्धक शब्दों का प्रयोग होता है। जामा जब माया स्व लड़ी नीली दोनों में ही १ प्रयोग होता है।

करण- मारा, बरिरी, कारण मारे ।

सम्प्रदान- प्रति, तिर, हेतु, निमित्त, व्यमाप्ति ।

व्यापान- व्येता, वनिष्ठा, जामने, धागे ।

वधिकरण- बीच, मध्य, भीतर, ऊपर, ऊपर ।

विभक्तियों एवं सम्बन्धक शब्दों में यह अन्तर है कि विभक्तियाँ उक्त वा सर्वनाम के साथ बाहर पाये जाती हैं किन्तु सम्बन्धक शब्द स्वतंत्र शब्द होने के कारण स्वयंभावे हैं।

	एक वक्ता	बहुवक्ता
कर्म-	मैं, मोहिं, मोहि, मोहू	उमहिं, हमें, हमरू
करण-	मोये, मोसं, मोसों, मोहिं, मोऊ	उमसं, उमसो
सम्प्रदान-	मोसों, मोसों, मोसिमरि, मोसों	उमसो, उमसों
व्यापान-	मोसो, मोसों, मोसते	उमसं
सम्बन्धकारक-	मम, मेरी, मेरे, मेरी, मो, मोर, मोरि, मोरी	उमरी, उमरे, उमार, उमारी, उमारि, उमारी, उमरु०००
वधिकरण-	मर	उमार

जबके वतिरिक्त निविभक्तित्व एवं वविभक्तित्व प्रयोग की क्रमाभावा शक्तियों की रक्षाओं में प्रचुरता है मिल जाती हैं।

बल, बुद्धि एवं जीव इत्यादि ।

२- अवस्था- बीध, रोग, क्षेता, क्षीरा, पीडा, परित्याग, एकाग्र
इत्यादि ।

३- व्यापार- कटाई, कटाव, कट, बीजसाध, दाउ, फटना इत्यादि।
ऊँची नीची में भाववाचक संज्ञाएँ तीन प्रकार के शब्दों से बनती हैं।

जाति संज्ञा से-

ता प्रत्यय लाकार, लृता, भिक्ता, गुरुता ।

‘ त्वे ’ प्रत्यय के संयोग से वेति- दासत्व, पशुत्व, वरत्व, पशुत्व ।

‘ फा ’ प्रत्यय के संयोग से वेति - छड़फना, नाछफना ।

‘ वार ’ प्रत्ययान्त भाववाचक संज्ञा शब्द भी ऊँची नीची में प्रचुर
मात्रा में उपलब्ध हुए हैं- पड़ता, खड़ा, उल्लास, घुरीकता । इनके वतिरिक्त
राज्य, पाँव आदि भाववाचक संज्ञा शब्द जातिवाचक संज्ञा शब्दों से भी बनते हैं।

ऊँची नीची प्रयुक्त कृषी प्रकार के भाव वाचक संज्ञा शब्द विशेषणों

से भी हैं :-

‘ ता ’ प्रत्यय के संयोग से - लटता, घुटता, लुका, नवानता, मज्जता।

‘ त्व ’ प्रत्यय के संयोग से - नमत्व, नडत्व, गुरुत्व

‘ वार ’ प्रत्यय के संयोग से - नड़ाई, छीटाई, पीटाई, बज्जवाई, चुराई ।

‘ फा ’ प्रत्यय के संयोग से विशेषणों से निर्मित भाववाचक संज्ञा शब्द
‘ फठफन ’ ।

इनके वतिरिक्त ऊँची नीची में कथ, लोथ आदि और भी उच्च
भाववाचक संज्ञा के लिए प्रयुक्त होती हैं।

क्रिया शब्दों से निर्मित पाचवाक्य संज्ञा शब्द-

“कट” प्रत्ययान्त- क्री - कटराष्ट, कटाष्ट, कुच्छुलाष्ट, कुच्छुलाष्ट ।

“वीर” प्रत्ययान्त- क्री - क्काई, क्का, उत्ताई, सिताई ।

“न” प्रत्ययान्त- क्री - फल, उल, धल, पल जैसे वतिरिक्त “नीरु नार वादि पाचवाक्य संज्ञा शब्द भी क्रिया शब्दों से बने हैं।

सही गीरी एवं क्रमान्ता दोनों में प्रयुक्त हुए व्यक्तिवाक्य संज्ञा शब्द से नीरु हुए वातिवाक्य संज्ञा शब्द व्यक्तिवाक्य की भाँति प्रयुक्त हुए हैं। क्री- कच्छुली क्री, रायण ने गीध की नारा में प्रसन्न में बहुत व्यक्तिवाक्य होती हुए भी वातिवाक्य संज्ञा शब्द की भाँति प्रयुक्त हुआ है नीरु कुरे में गीध वातिवाक्य संज्ञा होती हुए भी व्यक्तिवाक्य संज्ञा शब्द । क्काई के लिए प्रयुक्त हुआ। जैसे वतिरिक्त - पुरी जगन्नाथ, पैरी भुगाल, दाऊ । मछीवा, उक्काकिन्न उक्का तथा सितारे हिन्द । राजा शिव प्रसाद । भारतीय वतिरिक्त । गुणई जी । गुली- वास । वशिष्ठ । वशिष्ठी हिन्दुस्तान । वातिवाक्य संज्ञा शब्दों की सूची है। जिसका प्रयोग व्यक्तिवाक्य संज्ञा शब्दों के लिए प्रयुक्त होता है- कामता प्रसाद गुरु ने दी है। तथा जी हुए योगल्ल संज्ञाई जी पदों में मूल में वातिवाक्य संज्ञाई की किन्तु उनका प्रयोग व्यक्तिवाक्य संज्ञा की लिए होता है क्री- अनुमान, सिमाऊ, गीपास, कीधिर वादि शब्दों की सूची गुरु ने कभी हिन्दी व्याकरण में दी है।

क्रमान्ता में स्वरान्त शब्दों की अधिकता होने के कारण उसके संज्ञा शब्द भी स्वरान्त ही हैं। डा० बीरेन्द्र झाँ ने कभी क्रमान्ता व्याकरण में क्रमान्ता में बाँठ स्वरों क, का, इ, ई, उ, ऊ, वी, वी से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द माने हैं किन्तु नीरु है वे भी अन्त होने वाले संज्ञा शब्द क्रमान्ता में मिल जाते हैं। वह तरह सब स्वरों से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द अब माना में पाए जाते हैं-

कारान्त संज्ञा शब्द-

प्रमाणों में दो प्रकार के कारान्त शब्दों का प्रयोग किया है। एक तो मूल कारान्त शब्दों का कप्त, जन्म, का, ना, त्त, वत्त, पीत्त, नात्त आदि छह दीर्घ स्वरान्त शब्दों को छत्र करके प्रयुक्त किया गया है। जैसे- उपात्ता, नीत्ता, कर्त्ता, नात्ता, मात्त, नारी के लिए उपात्त, नीत्त, कर्त्त, नात्त, मात्त, नार शब्दों का प्रयोग मिलता है।

आकारान्त संज्ञा शब्द-

इन भाषा प्रयुक्त आकारान्त शब्द छह ही जन्मे मूल रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा कुछ छत्र कारान्त की कार्य में संज्ञा स्थिति के लिए आकारान्त कर दिया है- होना, टीना, कना, कौना, राना, तथा पीना ।पना। जात, कस्तार, गीत ।गन। खुताय है पीना, नात्ता, कस्तार, गोना, खुताय, छह शब्दों का प्रयोग मिलता है।

कारान्त संज्ञा शब्द-

कारान्त शब्द भी इन भाषा में कुछ जन्मे मूल रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा कुछ आकारान्त कारान्त, कारान्त तथा कारान्त एवं कारान्त शब्दों का भी कवियों ने काव्य के उपरान्त जोड़ कर कारान्त प्रयोग किया है -

जगिति, पति, पति, जाति, सति, विपति, पुरति ।

तथा- वापु, वाफर, उपात्त, वाव जाति शब्द के स्थान में भी वाव, वाफरि, उपाव, वाव जाति शब्द प्रयुक्त किए हैं।

कारान्त संज्ञा हव्य- क्रमाणा में प्रयुक्त है कारान्त संज्ञा हव्य अधिकतर कभी
 मुल रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं-
 कमी, नानी, माह, माह, माहुरी, भिराह, बली,
 नन्दराणी । परन्तु कहीं कहीं मित्र रूप के प्रयोग भी
 मिलते हैं- उपाय, जल, मुल पीठ, बादि लड़ी नीली के
 कारान्त हव्यों के हैं कारान्त प्रयोग मिलते हैं - उपाह, बली,
 मुली, पीठी बादि ।

उ कारान्त संज्ञा हव्य क्रमाणा में प्रयुक्त उ कारान्त संज्ञा हव्य कभी मुल रूप में ही
 प्रयुक्त हुए हैं- कू, बाहु, बाहु, नाउ, नाहु, नाहु, नाहु,
 केमु रेनु, सहु लड़ी नीली के अधिकतर कारान्त संज्ञा हव्य
 क्रमाणा में उ कारान्त रूप में प्रयुक्त होते हैं- काम, लैव,
 हाव, पर बादि हव्य क्रमाणा में बाहु, लहु, लाहु तथा
 बह रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

ऊ कारान्त संज्ञा हव्य- क्रमाणा में पाए जाने वाले प्रायः कभी ऊ कारान्त
 हव्य कभी मुल रूप में प्रयुक्त हुए हैं-
 गऊ, कू, बाऊ, गटाऊ, गार, बादि ।

ए कारान्त संज्ञा हव्य- क्रमाणा में ऐसे रूपों की अधिकता नहीं-

भिर, वारे, लारे, हुलारे बादि संकारान्त हव्यों का प्रयोग
 क्रमाणा कवियों ने किया है।

ऐकारान्त संज्ञा हव्य- ऐ कारान्त अधिकतर रूपों का प्रयोग क्रमाणा में बहुत कम
 मिलता है- बाह । बाऊ । वरे । वड । ली । लय ।

कै । कैली ।, विचै । विचय । कौदे । कौपा । चित्ते । चुरप । बादि हर्षी
का प्रयोग कर्माचा कर्षीयै नै किरा है।

बीभारान्त संज्ञा हर्ष- लड़ी गीली के बा कारान्त संज्ञा हर्ष कर्माचा में बीभारान्त
बीर बीभारान्त ही जाती हैं क्तः कर्माचा में का प्रकार के
बीभारान्त बीर बीभारान्त संज्ञा हर्षों की वक्षिता है-
गारा, कात्ता, गा, गारा तथा क्कात्ता, क्कत्ता, क्करी,
क्का, कैता, ठिक्का, कुक्का, नात्ता, क्कत्ता, टैरा, क्का
क्का, क्कीता बादि लड़ी गीली के बीभारान्त हर्षों के
स्थान में कर्माचा में बीभारान्त गारी, कारी, गी, गरी
तथा बीभारान्त क्कारी, क्कत्तानी, क्करी, क्का, कैरी,
ठिक्कानी, कुक्कानी, नात्तानी, क्कत्तानी, टैरानी, क्कत्तानी,
क्कीतानी बादि हर्ष ही जाती हैं।

लड़ी गीली की भाँति व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ कर्माचा में भी कीक
रूप में प्रयुक्त हुई हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के लिए उनके पर्यायवाची हर्षों के प्रयोग की
कर्माचा कर्षियों की रचना में मिल जाती हैं - कै- कृष्ण के लिए - क्कत्ता, क्कत्ता
क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, कृष्ण ।

कौपा- क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता ।

पर्यायवाची हर्षों का प्रयोग-

कृष्ण- क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता,
क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता ।

राधा- क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता, क्कत्ता ।

वाचिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग क्रमात्मा कवियों ने कुछ

विशेषताओं के साथ किया है-

प्रथम क्रमात्मा में प्रयुक्त वाचिवाचक संज्ञाओं की एक विशेषता है कि कवियों ने लोक स्थानों पर व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ निरिक्त या अनिरिक्त बहुवचनवाचक विशेषण जोड़ कर उनका प्रयोग वाचिवाचक संज्ञा की भाँति किया गया है। जैसे- कोटिलोक, कोटिज, कोटिमल, कोटि सपि, सत, सत मन वादि ।

दुसरी उदाहरणीय बात क्रमात्मा में प्रयुक्त वाचिवाचक संज्ञाओं के लिए यह है कि एक एक, कई वादि वाचिवाचक संज्ञाएँ एक विशिष्ट तथा एक वादि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ जाती हैं तब उनका प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ जाती हैं तब उनका प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञा के लिए ही होता है- जैसे एक काहु बुराही तथा गीय बाकी वैति जायी ।

मायवाचक संज्ञा सव्य-

क्रमात्मा में नीचे सूची नीची की भाँति मायवाचक संज्ञा सव्य प्रायः वाचिवाचक संज्ञा, विशेषण ली क्रिया सव्यों से मिलते हैं जिनमें त्व, ता, पा, ता म, सट प्रत्यय लाये जाते हैं।

संज्ञा वीर विशेषण सव्यों से मिलित मायवाचक संज्ञाएँ-

ता - प्रत्यय के योग है-

हे स्वस्ता, हीनता, मृता, लुप्ता, दीनता, मक्ता, निवृत्ता, नीनता, विनता ।

वा- त्व प्रत्यय के योग है- सुत्त्व, हृत्त्व, मत्त्व, प्रुत्त्व ।

४ - फा , फु या फी प्रत्यय के योग से - भाऊफा, कसु, लीफनी जैसे वतिरिक्त अन्य प्रत्यय हटाकर भी- उल्टा और विरुद्धार्थों से भाववाचक उल्टावों का निर्माण हुआ है-

वा - प्रत्यय के संयोग से -

वफा है, कपार वफा है, हुज्जार्ह, गरुजार्ह शब्दादि में हैं जफा वह जीड़ कर बैठी - चुराह है, कमर, निहुराह, बड़र, रसिकर ।

वात- प्रत्यय जीड़ कर बैठी- हुज्जालात, बह्जालात, वर ।

वीरी- प्रत्यय जीड़ कर, ठाीरी, निगीरी ।

हज्जों के प्रत्यय दीर्घ बनार की लु करके और अंत में वाच प्रत्यय जीड़ कर ठुह्राह, पिनाह, हुज्जार्ह ।

शब्दान्त के दीर्घ बनार की लु करके और उत्तम प्रत्यय जीड़ कर फाव, फावाव ।

हज्ज के प्रत्यय दीर्घ बनार की लु करके और वास्तविक वास्तव प्रत्यय जीड़ कर बैठी- ठुह्राह ठाहुरा- वास्तव वा वास्तव - ठुह्राह, नीराह, कसाह वापि ।

यह प्रकार से और प्रत्ययान्त भाववाचक हज्जों का प्रयोग क्रमांश में किया जाता है।

क्रिया हज्जों से निर्माण-

क्रमांश में भाववाचक उल्टा हज्ज क्रिया हज्जों से भी बनाए गए हैं। उनके निर्माण के आधार निम्नलिखित हैं :-

क्रिया के पुल वातु रूप की भी प्रयोग कहीं कहीं भाष्यात्मक संज्ञा के लिए क्रमांश कथियाँ न किया है- कीर, झीड़ा। नाप, तोप, हाप ।

पुल वातु में वाड या वाऊ प्रत्यय लाकर या कहीं विभूत रूप वाप या वापा के लीग है दुराड, दुराऊ, दुराव, दुरावा ।

पुलवातु रूप में वान प्रत्यय लाकर की, संवान, वितान, ठिकान, ठिकान, पुल वातु रूप में नि या नी प्रत्यय जोड़ कर की - कली, जली, थियलि, लली, मिली, कली, पटकनि, लखनि, पटकनि, पलनि ।

पुल वातु रूप में वाई प्रत्यय जोड़ कर - की कवाई, सराई, उत्तराई, फड़ाई, फड़ाई ।

पुल वातु रूप में ' वानी ' प्रत्यय जोड़ कर की - कापानी, लपानी ।

पुल वातु रूप में ' वार ' प्रत्यय जोड़ कर, की - कार, कितार ।

संज्ञाएँ हैं - क्रमांश में प्रयुक्त हुए की भाष्यात्मक संज्ञाएँ भी कितना निमाण संज्ञाएँ कथियाँ हैं हुआ है, किमें लानेवाले प्रयुक्त प्रत्यय य है ।

ता- प्रत्यय के लीग है - का- ता - कता - रूप - ता - कता,

त्व - " - कतात्व, कत्व । तथा

पी - " - कतापी वादि भाष्यात्मक संज्ञाएँ कती हैं।

भाष्यात्मक संज्ञाएँ हैं निर्मित- क्रमांश कथियाँ द्वारा प्रयुक्त हुए की भाष्यात्मक संज्ञाएँ कथ हैं कितना निमाण भाष्यात्मक संज्ञाएँ - वाई, ई, हाई वादि प्रत्यय लाकर कति गये हैं।

बारे- प्रत्यय के संयोग से - पलायं, वैपलायं ।

ई - प्रत्यय के संयोग से- बाह्यस्ताई, कृतस्ताई, पंक्तस्ताई, कङ्कताई, मिहुर-
ताई, प्रभुताई, श्यामताई, पुण्डरिताई वादि ।

शारे- प्रत्यय के संयोग से - शिखाई वादि ।

हव्य - लिङ्ग

संज्ञा हव्यों में लिङ्ग कन स्वकारक ल लीन के ही कारण
स्वाभ्यन्तर होता है और विभिन्न प्रत्यय पुनः लय प्रकट करते हैं लिङ्ग हव्यों में ह्रस्व
विकार की ही स्वाभ्यन्तर होती है।

संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की जाति । पुरुषत्व वा स्त्री । का
नीच होता है उसे लिङ्ग कहते हैं।

सही नीची ही का किन्हीं की स्त्री नीचियाँ में ही लिङ्ग
होते हैं। स्त्री लिङ्ग स्व प्रकृति।

सही नीची स्व प्रकृति में लिङ्ग के ल या ही लिङ्ग निर्णय
का आधार की दोनों भाषाओं में समान ही है।

जागता प्रत्यय गुरु के अनुसार जिस संज्ञा है । यथार्थ का कल्पित।
पुरुषत्व का नीच होता है उसे पुच्छता कहते हैं- धी - लड़का, बाल, फट, कार
जैसे प्रत्यय की हव्य यथार्थ पुरुषत्व प्रकृति करते हैं और लुपति की हव्य कल्पित पुरुषत्व
की प्रकृति जिस संज्ञा है। यथार्थ का कल्पित स्त्रीत्व का नीच होता है उसे स्त्रीलिङ्ग
कहते हैं - धी - लड़की, गाय, लता, पुरी । प्रत्यय की हव्य यथार्थ स्त्रीत्व का और
कल्पित की कल्पित स्त्रीत्व नीच कहते हैं। कता: स्त्रीलिङ्ग हव्य हैं।

प्रकृति स्व सही नीची दोनों में लिङ्ग निर्धारण के नियम
जानें हैं -

- १- संज्ञा के लिङ्ग का नीच या ती प्रीक्षण या कृन्तनी क्रियाओं के रूप से होता है।
- २- ह्रस्व संज्ञाओं के पुच्छता स्व स्त्रीलिङ्ग में रूप भिन्न भिन्न होते हैं।

- १- प्राणिवाक्य संज्ञाओं में प्राणिवाक्य के लिंग के अनुसार ही लिंग निर्धारण होता है।
- २- संस्कृत के पुल्लिंग एवं नपुंसकलिङ्ग संज्ञा शब्द चिन्ही में अधिकतर पुल्लिङ्ग ही होते हैं।
- ३- अधिकतर सामान्यिक शब्दों का लिंग वस्तु शब्द के लिंग के अनुसार होता है।
- ४- संज्ञिक सामान्य और सामान्यिक विशेषण, सम्बन्धकारकोय विभक्ति तथा श्रुत प्राणि की उदात्ता है लिंग ज्ञान ही उदात्ता है।

उही नीचे एवं उदात्ता में निम्नलिखित प्रत्यय लाकर पुल्लिङ्ग शब्दों लाकर लीलाय न्य ज्ञाए जाते हैं :-

उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञा शब्दों में यदि कथा लाकर ली- ग्याह, ग्याहिली, पुनी - पुनीली - गीह- गीहिली, ल- ली नाग - नागिली ।

उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञा की दीर्घ करके - कल, कला, कलानय - लया, लयल- लयल, ल० व० लुल-लुला ।

उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञा के ल की कथा में परिवर्तित करके ली- कल-कलीर, किलीरी, कल - कली, ललन - ललनिल, ल० ली० लालल- लालली, ललन- ललनी, लल - लली, लीर- लीरी, लुन- लुनी - ललल- ललली ।

उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञा शब्दों के अन्तिम 'ल' की लानि या लानी में परिवर्तित करके ली- लल- ललिलानी, लल - ललिलानी - लल- ललिलानी, लुललिल-लुललिलानी, लिलुल- लिलुलानी - लील- लीलिलानी ।

उदात्ता और उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञा शब्दों के अन्त में अतिरिक्त 'नि' कथा नी लील कर - ल - ललनिल, लल - ललिलनी - लीर - लीलनी, लीर- लीलनी- लुल- लुलनी ।

उदात्ता पुल्लिङ्ग संज्ञाओं के अन्तिम ल ल 'ल' या 'ल' में परिवर्तित करके ली-

परा-परी, केरा-करी, लीरा-लीरी सु० गो० परा - परी, रेटा - रैटी,
छड़ा - छड़ी, मामा-मामी, मामा - मामी ।

वाक्यरान्त पुलिङ्ग संज्ञकों के वन्तिन 'वा' की लड़ या ली से परिवर्तित करके
लड़िना - लड़िनी ।

इ कारण्त्त पुलिङ्ग संज्ञा शब्दों के वन्तिन 'इ' को लु करके लोर शब्दान्त में नि या
नी जोड़ कर वक्ता शब्दान्त की 'इ' की लड़ या ली में परिवर्तित करके - लै-
लड़ - लड़नि, कपराधी - कपराधनि, पापी-पापनि, नासी - नासिनि, ई
स पिताधी-पिताधनि, हसी-हराधिनी, दाखी-दाखिनी - स्वामी-
स्वामिनी, लोपी - लोपिनि ।

दो कर्णों से अधिक कर्णवाले कर्णों के प्रथम कर्ण को लु करके तथा वन्त में वाज या
वानी प्रत्यय की योग से लै० ठाहर-ठाहानी, ठाहरनि-, फडि - फडाशनि,
नाहू - नुहाशनि - लाता - लाशनि ।

इस कारण्त्त पुलिङ्ग संज्ञा वाक्य शब्दों के वन्त में 'ल' प्रत्यय
छाकर स्त्रीलिङ्ग रूप बना लि जाते हैं, लै पुनार - पुनारिनि, नासी-नासिनि,
पुनार - पुनारिनि तथा ली तख कासि - कापिनि - लसि, नागिनि, बापिनि
बापि शब्द हैं।

कनी कनी फाफेवाक्य कारण्त्त वा वाक्यरान्त शब्दों में वृत्तता
के लये में 'इ' 'वा' का प्रत्यय छाकर स्त्रीलिङ्ग जाता है लै-पट्टा - पट्टी,
लौठा - लौठी, पट्टा-पट्टी, पीछा-पीछी, टोका - टोकी ।

नारा-नारिया, नारा - नारिया, ठिप्पा-ठिपिया, पीड़ा-
पुठिया, लडा-लडिया, लहरा-लहरिया ।

इस ल निम्नों के विरुद्ध भी फाफे वाक्य वाक्यरान्त वा 'इ'

कारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के वा पीड़ पर पुल्लिङ्ग बनते हैं- की- पड़ी-पड़ा,
गहरी - गहरा, तीमरा-तीमरा, ३ गुहड़ी - गुहड़ा तथा डाढ़- डाढ़, डाढ़-
डाढ़, खर- खरा ।

जो शीर्ष पुल्लिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग शब्दों में प्रत्यय लाने से बनता
है- की - पीड़ - पीड़ा, भी- भीड़ा, गलि- गलिनी, नर- नरणी ।

निराधर का प्रेम में गढ़ी वाकारान्त शब्दों के वन्धन वा की
काह स्त्रीलिङ्ग लाने के लिए 'ह' या 'वा' प्रत्यय भी लाया गया है - की कुहा, हुझिया,
हुझा- हुझिया, घटा- घिटिया । पित्त - पिठिया । ली० प्र०।

संस्कृत की ३ कारान्त लकारें हिन्दी में वाकारान्त होती हैं-
की- खी - वाह, वाह, वादि शब्दों के लिए लड़ी नीली एवं क्यमाया में कर्ज
वाता, वाता वादि पुल्लिङ्ग शब्द मिली हैं परन्तु लकी क्यमाय स्वयं वातु से वाता
शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं।

तीनों भाषाओं के प्राणी वाक्य संज्ञ शब्दों के लिंग को उनके
प्राणी एवं वधे तथा सम्बन्ध के द्वारा जाना जा सकता है किन्तु तन्त्राणिवाक्य संज्ञ
शब्द का लिंग जानना कभी कभी बहुत कठिन हो जाता है इसके लिए भाषा ज्ञान के
साथ साथ भाषा की प्रकृति का ज्ञान भी विशेष स्पष्ट है अनिवार्य है।

कल

संज्ञा के चित्त रूप से संज्ञा का ज्ञान होता है उसे कल कहते हैं।
सही ढीली संज्ञा कलना नामी में भी स्वयं से अनुकूल के
प्रयोग मिली हैं। कहीं कहीं संज्ञा प्रमाण से भी कल के रूप भी मिली हैं।

संज्ञा का भी रूप सही वस्तु का ज्ञान कराता है वह स्वयं
कीर भी अधिक वस्तुओं का भी कराता है वह अनुकूल की- लड़ा, कड़ा, टीपी,
बल, रंग बापि एक कल है कीर लड़े, कड़े, टीफिया, बली, रंगी बापि अनुकूल
है। यह सत्य बावराधिक प्रकृत होने के कारण अनुकूल में प्रकृत होती है- मानी नामा
बाप है। कलकारी जो यहाँ से बने गए, कलित अणि बहुत बड़े विचार थे।

कलनामा में स्वयं से अनुकूल बनाने का नियम-

कभी कभी बापार प्रकृत करी के लिए स्वयं से उर्दी का प्रयोग
अनुकूल की तरह होता है- की लू, लयी, लिखाम, लु, प्रु, लुकनलु
बापि एक कल सत्य अनुकूल की भाँति प्रकृत हुए हैं।

कहीं कहीं स्वयं से पूर्ण निश्चित या अनिश्चित संज्ञावाक्य
लिखणों का प्रयोग करते हैं उ अनुकूल में प्रयोग किए गए हैं- की- कीटि की,
बलि लू, लुर है, लुत लुत, लीव लीक, लीन लुप, लु लार, लुत लीप, बापि
सत्य अनुकूल में प्रकृत हुए हैं।

कारान्त खोली सत्य का कल्प स्वर के स्थान में है का है
का प्रयोग करते - के ली, ली, ली, ली, ली ।

कारान्त या कारान्त स्वयं के रूप में 'नि' जोड़कर

ग्याहीन - ग्याहीन, ग्याहीन, ग्याहीन, ग्याहीन, ग्याहीन, ग्याहीन ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका, ग्याका, ग्याका, ग्याका, ग्याका, ग्याका ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका के पूर्व अन्त में ' न ' जोड़ कर जी- जाका - जाका, ग्याका - ग्याका, ग्याका - ग्याका, ग्याका - ग्याका, ग्याका - ग्याका ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका, जाका, जाका, जाका, जाका, जाका ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका - जाका, जाका - जाका, जाका - जाका, जाका - जाका, जाका - जाका ।

ग्या - ग्या, ग्या, ग्या, ग्या, ग्या, ग्या ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका, जाका, जाका, जाका, जाका, जाका ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका, जाका, जाका, जाका, जाका, जाका ।

इस वाक्यान्त शब्दों के अन्त में ' न ' जोड़ कर जी-
जाका, जाका, जाका, जाका, जाका, जाका ।

सही पीली में बाकारान्त पुलिङा शब्दों के वन्तिम वा के स्थान पर ए का प्रयोग करते हैं- की - कीटा-कैट, पीड़ा - पीड़, पैजा - पैठ, उमासा - उमासी, लमसा - लमसे, कपड़ा - कपड़े, मक्खनवासा - मक्खनवासे ।

य बाकारान्त लकीलिङा शब्दों का बहुवचन वन्ति स्वर के स्वतः ए करते हैं मन्ता है, की - नारै, पी, पी, पाती, जाते, फीते, नाके - नय - नैत वादि ।

य बाकारान्त और फाकारान्त संज्ञाओं में 'ई' की प्रत्य कहे वन्त्य स्वर के परचाए का पीछे सर की - नारी - नारियाँ, पाती - पातियाँ, लकी - लकिा, पीती - पीतियाँ, टीपी - टीफियाँ, तिथि - तिथियाँ, पीड़ी - पीड़िया, पिड़ी - पिड़िया ।

य बाकारान्त संज्ञाओं से शब्द में केवल अनुस्वार जाकर की पुड़िया - पुड़ियाँ, हुड़िया - हुड़ियाँ, गुड़िया - गुड़ियाँ ।

इस लकीलिङा शब्दों के वन्त में 'ई' जाती है- की - का - काए, पाठशाचा - पाठशाचाए, कथा - कथाए, पाता - पाताए - कहु - कहुए, हु - हुए वादि ।

उपनाम

उपनामों के स्थान पर जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे उपनाम कहलाते

हैं।

उपनामों में प्रयुक्त होनेवाले उपनामों की संख्या १२ है-

मैं, तू, तु, आप, वह, धी, जी, कीड़े, कुछ, कौन और क्या । सही नीची में उपनामों में प्रयुक्त हैं उपनाम का अभाव है और वह तरह समता प्राप्त हुए के अनुसार हमें १२ उपनामों की गणना होता है। नीचे की भाषाओं में प्रयुक्त उपनामों के ६ हैं:-

१- पुरुषवाचक - मैं, तू, तु, वह, धी ।

२- भिन्नवाचक - आप

३- निरर्थक वाचक - कीड़े, वह, कौ, धी ।

४- सम्बन्ध वाचक - जी ।

५- प्रश्नवाचक - कौन । क्या, क्या ।

६- अनिश्चयवाचक - कीड़े, कुछ ।

डा० बीरेन्द्र झा ने उपनामों के आठ भेद माने हैं जिनमें सेच
ही निम्न सम्बन्धी - धी तथा आपवाचक - आप है ।

नीचे की भाषाओं में पुरुषवाचक उपनाम के तीन भेद हैं-

उच्च पुरुष - मैं । (तू)।

मध्य पुरुष - " तु " तुम

निम्न पुरुष - वह, धी

प्रकार से हैं -

कारण	रक्त रक्त	गुणवत्ता
रक्त	रक्त, रक्त	रक्त
रक्त	रक्त	रक्त
रक्त	रक्त, रक्त,	रक्त, रक्त
रक्त	रक्त	रक्त
रक्त	रक्त, रक्त	रक्त, रक्त
रक्त	रक्त	रक्त
रक्त	रक्त - र - री	रक्त-र-री
रक्त	रक्त, रक्त पर	रक्त, रक्त पर

पानी पाण्याची व पुरुषवाक्य लक्षणांची ही कारण रक्त व

गुण लक्षणता है।

सम्बन्ध वाक्य उदाहरण

सम्बन्ध वाक्य उदाहरण के प्रकारों में प्रयुक्त कारणीय रूप

नियम प्रकार के हैं :-

कारण	सम्बन्ध	प्रत्यय
क्या-	जिन, जिनहिं, जिनि, जिहिं जु, जो, जोह, जोह, जोन	वे, जिन, जो
कहाँ-	जाहि, जिहिं, जो, जोह, जानां जिनहीं	वे, जिनहीं
क्यों-	जाही छी	जिनहीं
सम्बन्ध-	जाहि, जिहिं, जानां	जिनहिं
व्यपदेशन-	जाहि, जाकी	जिनहीं
सम्बन्ध-	जा, जाहु, जाहि, जाकी, के, की	जिनि, जिनही, जिनके, जिनकी
व्यतिरेक-	जाहि । जिनहिं । जिहिं, जाहें, जिनहें, जापर, जाप, जाय	जिनहें, जिनमाहिं, जाही

सही नीची में प्रयुक्त सम्बन्धवाक्य उदाहरण के कारणीय रूप

नियमविविधता के मिली हैं :-

कारण	सम्बन्ध	प्रत्यय
क्या-	जो, जिन	जो, जिन, जिनानि
कहाँ-	जिनही, जिहि	जिनही, जिनह

कारण	जिससे	जिससे
सम्प्राप्त-	जिससे, जिसके लिए	जिससे, जिसके लिए
व्यापार-	जिससे	जिससे
सम्पत्ति-	जिससे, की, के	जिससे, की, के
व्यवस्था-	जिस में - पर	जिस - में - पर

सड़ी बोली के उत्तम पुरुष सर्वनाम के कारकीय प्रयोग-

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्म	मैं, मैंने	हम, हमने
करण	मुझसे	हमसे
सम्प्रदान	मुझको, मुझे	हमको, हमें
वपादान	मुझसे	हमसे
सम्बन्ध	मेरा, मेरी	हमारा - मे - मेरी
वधिकरण	मुझमें	हममें आदि

ब्रजभाषा एवं सड़ी बोली के उपरोक्त कारक विभक्ति प्रयोग के विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहाँ ब्रजभाषा विविध रूपों से युक्त है वहाँ सड़ी बोली के कारक रूपों में नियमितता दृष्टिगोचर होती है।

-----०४-----

नित्य सम्बन्धी

जमाया में प्रयुक्त नित्य सम्बन्धी एकताओं के कारणीय रूप

वे मिली हैं -

कारण-

एकता

बहुता

कहाँ

तिथी, ताप, घु,

ते, तिन, तेर, तेज, ते

ते, ताँ, तै, तहँ, ताँह,

तिनहीं, तेउ, तेऊ,

ताँह, तेऊ ।

क्यों-

ताहि, तिथि, ताँ, तिनही, ते, तिनही, तेउ, तेऊ

तिनाहँ, ताही कौं, ताँह,

ताँह

कण-

तापे, तिथि, ताही, ताही ताँ

उनहीं, तिनहीं, तिनहीं

सम्मान-

ताही, ताहि, तिथि, तिनहीं

तिनहीं, तिनहीं

कमाया-

ताहीं, ताहीं

तिनहीं

सम्बन्ध-

ताहँ, ताका, की, के, ताही

तिना, की, के, तिन

ताहीकी, तिनहीं के

ताँ

वधिकरण-

तापे, ताहीके, ताहिपर, उनमें

तिनहीं

उनही पे

सही नीची में प्रयुक्त नित्य सम्बन्धी एकताय के रूप वे मिली हैं :-

कारण

एकता

बहुता

कहाँ

ताँ, तिन

ताँ, तिन, तिनहीं

कर्म	तिरुक्कळी, तिरु	तिरुक्कळी, तिरु
करुण-	तिरु	तिरु
कम्पन-	तिरुक्कळी, तिरु	तिरुक्कळी, तिरु
कमापन-	तिरु	तिरु, तिरु
सम्पन्न-	तिरुक्कळी, की, के	तिरुक्कळी- की- के
व्यक्तिरुण-	तिरु	तिरु

प्रत्ययाक्त एकानाम

एकानामा में प्रयुक्त प्रत्ययाक्त एकानामों के विन्ध्य प्रकार के

कारणीय रूप मिलती हैं :-

कारक-	सक्यक	बहुवचन
कर्ता-	क्या, काहूँ, किन, किनि, किधि, की, कीन, काँ	
कर्म-	क्य, क्या, किधि, की, कीऊँ, कीना, काकाँ	
करण-	काधि, किधि, कापे, कापाँ, कीनपे, कीनपाँ, किधिपाँ, काधिपाँ ।	
उपप्राप्त-	काधि, किधि, कीन, काकी, काकुँ	
व्यापान-	काहीँ, कापीँ, कीनपी	
उपसर्ग-	किधि, कीन, काकी, काके, काकाँ, किनी, कीनका, की-के	
वधिकरण-	काके, कापर, कापे, किधिकर, कीनके, कीनपे ।	

उही नीचे में प्रयुक्त प्रत्ययाक्त एकानाम के विन्ध्यविरहित कारणीय

रूप मिलती हैं :-

कारक	सक्यक	बहुवचन
कर्ता-	कीन, किनि	कीन, किनि, किनिनि
कर्म- उपप्राप्त-	किनी, कि	किनी, किध
करण- व्यापान	किनी	किनी
उपसर्ग-	किनी, की, के	किनी, की- के

'कीन' प्रत्ययाक्त एकानाम के वतिरिक्त उही नीचे में प्रत्ययाक्त

'क्या' भी प्रयुक्त होती है जिसके कारणीय रूप ऊपर लाकर प्रयुक्त होती हैं।

वधिरण- काहूँ, काहूँके, काहूँमें, काहूँपर, एगहिनिमें, एगहीं, एगहिमें ।

तही नीली प्रसुत बनिरक्याक एकीम कीरें वीर कुव ही
 विरिज भम से प्रवलि हैं। कीरें के काहूँ व्य केवल एक पल में मिली हैं वही
 वही की विरुक्ति है वही नहुयन का काम पला है -

काहूँ-

काहूँ- कीरें, विरिज

काहूँ-एगहिम- विरिज की

काहूँ-एगहिम- विरिज है

काहूँ-एगहिम- विरिज - की - के

वधिरण- विरिज में

बनिरक्याक - कुव ही काहूँ रना नहीं होती ।

वापर वृत्त उत्पत्ति

उत्पत्ति वा वापरवृत्त उत्पत्ति में वाप और रापर वृत्त का भी प्रयोग हुआ है किन्तु इस निम्नलिखित मिली है :-

क्यां कारण- वाप, वापु, रापर ।

उत्पत्तिकारण- रापर, रापरी, रापरी, रापरी ।

उड़ी नीली में प्रयुक्त वापरवृत्त उत्पत्ति के कारणीय रूप के

मिली है :-

कारण	उत्पत्ति	वृत्त
क्यां-	वाप, वापरी	वाप ही, वाप तीनों में
कौ- उत्पत्ति	वापरी,	वाप तीनों ही
कारण- उत्पत्ति-	वापरी	वाप तीनों का
उत्पत्ति -	वापरी - कौ- के	वाप तीनों का- कौ- के
वर्णिकरण-	वापरी	वाप तीनों में

निरूपणाधी निरूपणी उत्पत्ति के उत्पत्ति में प्रयुक्त रूप

निम्नलिखित है :-

क्यां- ज, रधि, रा, य इति, य, इति, रा, य, इति

	जारी, जारि, जरे, जेरा	जर, जेरा
कर्म-	जर्म, जर, जरि, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि । जारी, जारि, जारि, जारि ।	जर्म, जे, जारि, जारि
करण-	जारि, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि ।	जारी, जारि, जारि
उपमान-	जारि, जारि	जारी, जारि की
व्यापार-	जारी, जारि	जारी, जारि
उपसर्ग-	जारी, जारि, जारि, जारि, जारि की, जारि की, जारि की ।	
व्यतिरिक्त-	ज, जारि, जारि, जारि, जारि, जारि	जारी, जारि, जारि

जारी जारि में प्रत्येक निरन्तरता निरन्तरता जारि के दो प्रतीक

मिली हैं ।

कर्म- कारण	जारी	जारी
कर्म-	जारी	जारी, जारि
कर्म- उपमान-	जारी, जारि	जारी, जारि
करण- व्यापार-	जारी	जारी
उपसर्ग-	जारी, जारि - की	जारी - जारि - की
व्यतिरिक्त-	जारी	जारी

छड़ी नीली में भी अन्य पुरुष एवं निरवस्थापी वृत्तों

छनीय के रूप समान ही रहते हैं उनके प्रयोग हैं :-

कर्म-	कर्म	कर्म, वे
कर्म-	उत्तम, उत्तमी, उत्त	उत्तम, उत्तमि, उत्तमी, उत्तम
कर्म-	उत्तरी	उत्तरी
उत्तमान-	उत्तमी, उत्त	उत्तमी, उत्तम
उत्तमान-	उत्तरी	उत्तरी
उत्तम-	उत्तम - के-की	उत्तम - के, की
व्यक्तिगत-	उत्तम	उत्तम

छनीय में प्रकाशना एवं छड़ी नीली का छनीय में यह प्रकार है।

छड़ी नीली के छनीयों का प्रकाशना में अधिकतर आधार होता है। यथा-

पुरुष वाक्य	छड़ी नीली	प्रकाशना
उत्तम पुरुष	मैं, हम	मैं, हम, हम, हम, मैं, हम
मध्यम पुरुष	तु, तुम	तु, तु, तू, तू, तू, तुम
अन्य पुरुष	वह, वे	वह, वह, या, वे, हम
निरवस्थाक	वह, वे	वह, जो, का, का, तीसरे, वे, ती, उन, तिन
निरवस्थाक	वाप	वाप, वापु, वापु
उत्तमवाक्य	वो	वो, वोन, वा, वो, कि
प्रत्ययवाक्य	कीन, रंग	कीन, कीन, का, कि कीन, कीन, का, कीन
व्यक्तिगत वाक्य	कीन रंग, रंग कीन	कीन, कीन, का, कीन कीन, कीन, का, कीन कीन, कीन, का, कीन कीन, कीन, का, कीन

क्रिया

क्रमात्मा एवं लड़ी नीली के रूप विधान का उत्तर लड़ी क्रिया स्त्री के द्वारा स्पष्ट परिचित हो जाता है। लड़क लड़ी नी माया की बात रमा में कृष्ण स्त्री तथा उदात्त क्रियाओं के विभिन्न उदात्ता ली जाती है। लड़ा समीपन का पर विचार कर लता अधिक उपलब्ध है। लड़ी नीली एवं क्रमात्मा दोनों में हीना उदात्त क्रिया का व्यवहार होता है। विभिन्न स्त्री एवं लड़ी में लड़ी रूप भी प्रकट होती है।

लड़ी नीली- विधान निरूपणार्थ

	लड़क	लड़क
लड़क पुरुष-	ई	ई
मध्यमपुरुष-	ई	ली
लड़क पुरुष-	ई	ई
क्रमात्मा		
लड़क पुरुष	ली, ली, ई	ई
मध्यम पुरुष	ई	ली
लड़क पुरुष	ई	ई
क्रिया निरूपणार्थ		
लड़ी नीली		
ली		ली
क्रमात्मा		
ली, ली, लुली, लली, लली		ली, लुली, लली

मविष्म निरुपसार्थ

	सही भीखी	
ककद	रत्नका	महुका
उ० पु०	चीरंगा	चीकी
म० पु०	चीगा	चीने
कक पु०	चीगा	चीने
	ककाका	
उ० पु०	चीकी	चीकी
म० पु०	चीकी	चीकी
क० पु०	चीकी, चीकी, चीकी, चीकी	चीकी, चीकी

ककाका कासाथ

सही भीखी		
उ० पु०	चीकी	ची
म० पु०	ची	चीकी
क० पु०	ची	ची

ककाका में ककाका कासाथ में कक पुता महुका में

चीकी कका पुता का प्रयोग मिलता है।

ककाका कासाथ

सही भीखी	चीका	ची
ककाका	चीकी, चीकी	ची

काठ रसा

संयुक्त काठ-

सही नीली रंग कलाका रंगों में ही परमान, पुत रंग
मविष्य तीन मुख्य काठ हैं। उनके भी क्रिया की रसा की दृष्टि से निरवयव,
संवासाय रंग वाताय तीन में बाँटे हैं जिनके पुतः पुत रंग वगुण में बाँटे हैं।
की-

	पुत निरवयव
सही नीली-	कठ गया
कलाका	गु गया
	पुत संवासाय
सही नीली	कठ कला
कलाका-	पी में धुपि नीली
	परमान वाताय
सही नीली	कठ रंग
कलाका-	गु रंग

संयुक्त क्रिया

सही नीली रंग कलाका रंगों में ही संयुक्त क्रियाओं का
प्रयोग प्रहुर भाषा में पाया जाता है। ये संयुक्त क्रियाओं की रसा वाचनिक हैं।

हल्क की किय कहे हुए एतुल कियार्थ जाती है की- कटकटाना, गिड़गिड़ाना,
फटफटाना, कटफटाना आदि ।

कम्पाचना में भी कियार्थ एतल के कियुत रूप के साथ होती-

कम ली, बाने है

२- प्रत्याकल कम्पात रूप के साथ होती- कैकल००किरि००। तारी रहियी, नी जात ।

३- कर्मानकालि कम्पात के साथ होती- कैकल किरि, गारी है रह ।

४- प्रत्याकल कम्पात के साथ- होती- कैरि तिमि, करि बने आदि ।

कम्पाचना एवं लड़ी नीली के किय प्रयोग में उल्लेख एवं वचना
की एतुप में का प्रकार कम्पा किय जा सकता है।

किया-कै-

जहाँ कम्पाचना की कियार्थ 'नी' 'न' कीर' 'वी' है कम्पाची
एतुती है जहाँ लड़ी नीली की साधारण कियार्थों के कम्पा 'न' केवल 'ना' आता है।
यहाँ कम्पाचना है-

'नी' है कम्पा होने वाली कियार्थ-

पीनी, लीनी, पीनी, बीनी, फनी, सेली, गिली, डली, पैली,
मारली, पीटली, डाटली, पिलानी आदि ।

'न' है कम्पा होने वाली कियार्थ-

बाकल, पाकल, गकल, रकल, एकल, लकल, पैकल

'नी' है कम्पा होने वाली कियार्थ-

फुमारिली, फुलकली, मारिली, फुलमारिली, निशारिली,

मिलारिली आदि ।

सही नीची की 'ना' ककारवाली क्रियाएँ-

छा, केना, पीना, खाना, मात्ता, बाँझा, डीना, सीना,
ई जना, ऐका, फना, पाना, डाना आदि ।

ककारवाली की क्रियावाँ में विभिन्न प्रत्यय लाकर एक ही कर्त्तृ
की प्रकट करने वाले लोक शब्द बनावे जाते हैं। प्रत्ययान्त कृष्ण नाम के छिदर पुस्तिका
सम्बन्ध में चार प्रकार के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं :-

जी, की, को तथा यो की-

कीनी, कीनी, कियी, रियी

पीनी, पीनी, पियी, पियी

खीनी, खीनी, खीयी, खीयी

डीनी, डीनी, डीयी, डीयी

परन्तु ककारवाली के इन चार प्रत्ययों के स्थान पर सही नीची में
कस्त 'या' का व्यवहार होता है ; की-

पिया, किया, छिया, दिया, बीया, सी या आदि ।

सही नीची में ककारवाली क्रियाएँ कर्त्ता अपनी प्रकट रूप में जाती हैं कर्त्ता ककारवाली में 'कयी'
प्रत्यय लाता है। कर्त्ता के साथ क्रिया की जाकर हु- बाना, खाना, लाना, राना, कल
खना आदि ।

परन्तु अब ये-

हु- कयी, लयी, लयी, रविय १, लवियनी आदि । ककारवाली

की सहायक क्रियावाँ में भी लोक भाषा होती है :- की-

छड़ी नीली

कमलपत्र

कमलपत्र

उ० पु०	हूँ, हँ	हाँ, हाँ, हूँ, हँ
म० पु०	है, ही	है, ही
ब० पु०	है, हँ	है, कहे, कहाँ, हँ, कहँ, कहाँ

कमलपत्र

उ० पु०	पा, पे	पौ, पे, पत्ती, हुत्ती, हुत्ती, पत्ती, पत्ती
म० पु०		
ब० पु०	पौ, पी	पौ, हुत्ती, पत्ती, पौ, हुत्ती

कमलपत्र

उ० पु०	होका, होकी, होकी	होका, होकी, होका, होकी
म० पु०	होका, होकी, होका	होका, होकी, होका ।
ब० पु०	होका, होका, होका	होका, होका, होका
	होकी, होकी, होकी	होका, होकी, होकी
	होकी, होकी	होकी, होकी, होका

जब तक १८ वीं सताब्दी तक हिन्दी साहित्य में कमलपत्र का प्राधान्य था और छड़ी नीली साहित्य ही ही उपजायीय थी तब तक ही साहित्य में दोनों भाषाओं कमलपत्र और छड़ी नीली के व्याकरण का एक कतर दोनों की छटा नहीं था। छड़ी नीली के व्याकरण के सीखने की किताबों की आवश्यकता प्रतीत न हुई। १८ वीं सताब्दी के उपरान्त जब छड़ी नीली गम का प्रसंग प्रारम्भ हुआ

वीर भारतीय युवा के शक्ति में उल्लास की वायु को प्रस्तुत किया। इन साहित्य में भी भाषाएँ एक एक वीर दूसरी गप में बदलकर व्यस्त होने लगी। दोनों भाषाओं में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी उनकी स्वायत्ती में केवल ऊपर फिलजवा मया है, नडा कन्तार है। यह कन्तार नीचे के एक एक प्रकाशना वीर एक गप। लड़ी नीली। वे उपाहरणों से वीर की स्पष्ट हो जाया-

यस - प्रकाशना

कौ प्रार प्रकाशना ।

यस लीन परल सुन्दर सदा खुसति परल । २

यस- लड़ी नीली

कौ वीर कौ वीर वीर नाग के वीर की कौ में मल्ल वीर
रस ली है। कलाभिली नयनसिमा विलस के फुल्लों की भी प्रकाश कानों पर
धारण कल्ल वीर का की धरण कल्ल है। यह लु लड़ी सुन्दर फिलज पल्ल है।

प्रकाशना का नाम केवल लड़ी नीली का नामिल्ल का नय है।
प्रकाशना में कौ वीर फुल्ल के नयनल 'कौ वीर' फुल्ल में लड़ी नीली में कौ
वीर फुल्लों का ल्य है लिम है। लड़ी नीली में कौ में विलस के फुल्लों की भी कारण
विलस युक्त कन्तार की कलाभिली धनल माने जायी, परन्तु प्रकाशना में कल्लों
का लीन सम्ब है। लल्लि- लल्लि लल्ल का प्रयोग लड़ी नीली में भी बीला प्रकाशना
की फिलज कल्ल, मल्ल, वीर, वल्ल, पल्ल, वल्ल, लड़ी नीली में प्रकाश कल्ल, मल्ल,
धारण कल्ल, धरण कल्ल, फुल्ल फिलज पल्ल फिलज पल्ल ली न है। लीन
वीर लु वीर यह लिम ल्य है वे प्रकाशना के स्वायत्त के प्रतिकूल हैं कल्ल लीन वीर
लिम लिम की लीनीन लल्ल जाया।

व्यय भेद

लंका, लंकाय वीर क्रिया वाचि की भाँति क्रमाणा वीर

सही नीती के व्ययों में भी भेद है—

सही नीती के व्यय

कहाँ

कहाँ

कहाँ

कहाँ—

कहाँ

कहाँ, कहीं

क्रमाणा के व्यय

कहाँ, का, की, कहाँ

कित्त, कित्ति, कहाँ, कहाँ, कहाँ, कहाँ

कहाँ, कित्त, कित्ति, कहाँ, कहाँ

कहाँ, कित्त, कित्ति, कहाँ, कहाँ, कहाँ ।

कहाँ, कहाँ, कहाँ

कहाँ, कहीं, कहाँ, की, कित्त, कित्ति

व्य भेद

व्य भेद की दृष्टि से दोनों नीतियों में एक महत्वपूर्ण अन्तर है

कहाँ सही नीती की अधिकारिता वास्तव्य लंकाई, लंकाय, विजयण, धूत, कुन्त

तथा कहीं कहीं वर्तमान कुन्त भी क्रमाणा में अधिकारिता होती है— की—

लंका वीर

सही नीती

लंका, लंकाय, लंका, लंका

क्रमाणा

लंका, लंका, लंका, लंका

कर्मोप

करी नीली

करी नीली, उरु, निरु

करी, नीली, उरु, निरु

विनिर्णय

करी, नीली, नीली, नीली, नीली

क्रिया

करी, नीली, नीली

करी, नीली, नीली, नीली

कर्मोप

करी, नीली, नीली, नीली

करी, नीली, नीली, नीली

करी, नीली, नीली, नीली, नीली

करी, नीली, नीली, नीली

करी, नीली, नीली, नीली

-----o:-----

कहाँ कहीं भी तब की गुरु से छु और भी सारे कहीं की
छु से गुरु का दिया है।

४- अब माया में काल कितनी का बीच समय ही। वेद-

कहाँ- किन्तु कहीं पर विहित राम यदि पाँचि बतायी ।

राम के नाम कहीं का ने बिना बता है।

कहाँ- छत्तीरी नन्दनन्दन वीर ।

करण- जगद्गुरु कीन्हीं, एक सुख पाँचि निब नाला मारी ।

सम्मान- भी छु छु कर कर सुनि सुनें ही नन्द नामि पाये ।

५- काल में भी कौनसे तब- किन्हीं तब कहीं के बाहर पर

कहीं की विधि कला कलाया में कहा है, वेद-

हीत प्रजात मातृकमि पूरा ।

कौन और भी करि पूरा । वसन्त

६- कलाया में सन, कन, कन, पन, मन बापि का प्रयोग

हीता ही है। पर कहुवा तब के मन्त्रका "काल" और "काल" कल: १ और "की"

भी ही जाना करते हैं, की सन, मन, मन, पान, मान बापि। कवियों की का

कहाँ की तब की बाप-कला पढ़ती है कहीं की का प्रयोग कर ली है।

यथा- कल नै यदि नाम ज्ञाया । १

परि पुन निरुक्त नै पुनर्न पर । २ वसन्त

७- कलाया की प्रकृति संयुक्त कहीं से कहीं की है किन्तु कवियों

ने कौनों प्रकार के प्रयोगों की छु ली है, वेद-

"किन्तु प्रयोग काली गुरु ।" ३

१- सुदीराम कहीं- गुरु कल पु० २१

२- " " "

३- " " "

सड़ी नीली में रंग बरही है।

सड़ी नीली में माया के हुए लम्बाई कविता की उच्च गैरी की कविता कहलाने की सम्मानता तथा विनम्रों में बाहर पाने की शक्तिता इस समी है। माया का बहुत प्रतीक सड़ी नीली के प्रकृति गौरव के प्रतिकृत है। बाहे कव गव ही बाहे पव । सड़ी नीली की कविता कही केष्ट सम्मान जाती है किमें गव के निगंध के साथ साथ माया भी परिष्कृत और शुद्ध हो। काव्य में शीमता, शिम्कता बाहि जाने के कि माया का बहुत प्रतीक सड़ी नीली के विनम्रों की प्राम्द बरही है।

य प्रकार नीली मायाओं के आकर्षण के सुतात्मक अध्ययन है नीली के लम्ब, प्रकृति एवं विकास की स्थिति का प्रकाश बलता है। कदा नीली का प्रीत कव है कदा हुए लम्ब के साथ नीली में पराप्त है। यही लम्ब का प्रीत का निष्पन्न प्रकृत साथ प्राम्द का विनम्र है।

-----:0:-----

उपनिषद्-ग्रन्थ

संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-हिन्दी

- अष्टावक्र की रचना सम्प्रदाय - डा० दीन दयाल गुप्त - साहित्य सम्मेलन प्रकाश
अपभ्रंश काव्य की - डा० लालकृष्ण नाथी - नाग नाथ कारिकाट्ट सीरीज, कलकत्ता १९२७ ई
साधुनिक कविता की काव्य साधना - राधिकादि नाथ, १९५८ ई
साधुनिक काव्य द्वारा - डा० के.टी. नारायण सुब्रह्म २००० वि० हरद्वारी मंदिर काशी
साधुनिक कविता की भाषा - कुलकर्णीर सुब्रह्म २००८ वि० का प्रकाश रत्न चन्द्र
बागरा
साधुनिक कविता की भाषा कविता की प्रगति - कुलकर्णीर प्रकाश नाथ १९२६ ई ज्ञान मण्डल
काशी
साधुनिक प्रकाशना काव्य - पं० सुदीप मिश्रा वि० १९६६ वि० हरद्वारी प्रकाश मंदिर
प्रकाश
साधुनिक साहित्य - नन्द सुन्दर नाथी २००० वि० भारती मंडार, लखनऊ
साधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - डा० भीष्मनाथ हिन्दी परिणद
प्रकाश वि० वि०
साधुनिक हिन्दी साहित्य - डा० लाला राम नाथी - हिन्दी परिणद प्रकाश वि० वि०
साधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - पं० भीष्मनाथ सुब्रह्म १९६६ वि० हिन्दी
साहित्य कूटीर काशी
उपनिषद् व्याख्या - हिन्दी भाषा नाथ नन्द ई० वि० वि० वि०
उपनिषद् का संत परिवार - पं० परमहंस सुब्रह्म २००८ वि० भारती मंडार प्रकाश

उर्दू साहित्य का इतिहास- फ़ारुख़-नास १९६२ वि० कलकत्ता ग्रन्थालय कायाधाय, काशी

उर्दू का रहस्य- पं० चम्पकली पाण्डेय

उर्दू साहित्य का इतिहास- ग्राफ़मैली

कवरीन की भाषा और लिपि- चम्पकली पाण्डेय १९६६ वि० ना० प्र० स० काशी

कबीर ग्रन्थावली- बाबू श्यामसुन्दरदास १९२८ के अखिन्त प्रेस लि० प्रयाग

कानायनी- प्रयाग २००० वि० लीटर प्रेस प्रयाग

काव्य विनय- मिश्रादीदास १९६२ वि० कैंटन प्रेस बनारस

काव्यानुशासन- वैकल्प

कीर्तिका और कवचट भाषा- डा० सिद्धादाश्रित १९६६ ई० साहित्य भवन लि० प्रयाग

कुमार पास प्रजिरोव- गान्ध्याद दीरीष ई० मुनि विनि विषय

कड़ी नीली गान्धीदास - संकलि बाबू कवीर्य प्रयाग ली० ए० पं० सुनीलवर प्रयाग वि०

कड़ी नीली का गान्धीदास- सिलिड वि० २०१२ वि० ना० प्र० स० काशी

कड़ी नीली की कविता का संश्लेष परिकल्प- पं० रामनरेश विवाठी १९३६ के

हिन्दी गान्धिर प्रेस, प्रयाग

कड़ी नीली का पत्र- ए० पिन्काट

कड़ी नीली हिन्दी साहित्य का इतिहास- फ़ारुख़-नास २००६ वि० हिन्दी साहित्य

कुटीर काव्य

कुवरी की हिन्दी कविता- फ़ारुख़-नास

गान्ध्या- कवच पं० १९६६ वि० मास्ती गन्धार प्रयाग

गान्ध्या सप्तमती- रास

गान्धीन हिन्दी- डा० बीरेन्द्र का

तरीगिणी- पं० मिश्रादीदास काव्यविषी

वसिनी हिन्दी- डा० बाबुराम सक्ती १९६२ के हिन्दुस्तानी शैली, प्रयाग

वसिन्ती का नव वीर का - भीरान का हिन्दी प्रचार का उपरान्त

कैली नाम्नाका - डॉ० बालकृष्ण कौट रामानुज स्वामी का १९१८ ई०

नवीर काकावि - सुरावणिकीर १९२२ ई० बलिात एण्ड की०

पं० नयाराम - मन्ना बलि स्वामी का मपुरा

नासिन्तीपाल्मान - उयल मि

फमवलि - स्वर्णव डॉ० बलिबल माणणी मि० वी० न० का०

म कागर - उयल मि

पलिउ - निराता - २००० मि० का ग्रन्थगार उयल

प्राकृत व्याकरण - स्वर्णव

प्राकृत धर्म - माणिक्य

पलात्मा प्रमत्त वीर योग वार - भीरु कृत० डॉ० २० का० उपाधी १९१० ई०

प्रमत्त विन्तामणि - डॉ० मुनि मि विन्तामि विन्तामि

प्राकृत फीत - डॉ० मन्नील वीर विन्तामि विन्तामि १९०२

प्राकृत प्रमत्त - डॉ० बलि प्रमत्त कृष्ण, उयल

प्राचीन वीर काका - डॉ० विन्तामि का नाम्नाका - बलिबल वीरिण १९१५

पुरातन प्रमत्त वीर - डॉ० मि विन्तामि मुनि, विन्तामि वीर वीर नाम्ना

पुरानी विन्तामि - कृष्ण वीर वीरि २००५ मि० ना० प्र० वी० काशी

पुरानी रावस्थानी - वीरिणी, १९१५ ई० ना० प्र० वी० काशी

काट विन्तामि काका - डॉ० मन्नील वीर वीरि

कृष्णवलि की प्रमिता - बालकृष्ण रामानुज कृत - डॉ० १९१५ मि० ना० प्र० वी० काशी

कृष्णाभा की कला - रामनारायण कृष्णी १९५१ ई० नारायण मिहिर प्रग

कृष्णाभा - डा० बीरेन्द्र काँ १९५४ ई० हिन्दुस्तानी शैली, प्रग

कृष्णाभा का व्याकरण - विहीरीदास वाजपेयी १९५८ ई० रामनारायण दास प्रग

कृष्णाभा का व्याकरण - डा० बीरेन्द्र काँ १९५४ रामनारायण दास प्रग

कृष्णीय साहित्य - डा० सत्येन्द्र १९५६ ई० साहित्य रत्न मठार, बागरा

कृष्णाभा का नाम सही गीती - डा० कपिलेश सिंह १९५६ ई० विनीय पुस्तक मन्दिर, बागरा

प्रणीत छार - बाबाय रामकन्द पुस्तक ई० २००४ हिन्दु वि० वि० काशी

मास्ती काय माया कीर हिन्दी - डा० सुनीति कुमार पाटुज्या १९५४ ई० राकमठ

प्रकाशन दिल्ली

नीचपुरी माया कीर साहित्य - डा० कृष्णनारायण तिमारी - राकमठ परिवार

पटना, १९५४ ई०

महर्षि - डा० पीताम्बरसु कट्ट्याल - कवच पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ

महाराज कृष्णवती - कृष्ण तिमारी मि १९५३ वि० गंगा पुस्तकालय लखनऊ

मिलन विनीय - मिलन १९७० वि० हिन्दी कृष्ण प्रकाश मंडली - लखनऊ

माया - महादेवी काँ १९५० विनामिस्तान प्रकाशनालय

राय कला - सत्येन्द्र २००८ हिन्दी साहित्य कुटीर काठ

राजस्थान का विश्व साहित्य - पी० मोतीदास मेनारिया १९५२ ई० विनीय पुस्तक

मठार, उदयपुर

राजस्थानी माया - डा० सुनीति कुमार कट्टी - उदयपुर १९५६ ई०

रीति काव्य की प्रणालि - डा० नीरज

सायनी का ज्ञान - काशीगिरि काठरजी १९५० ई०

हिन्दी सम्मानोत्सव- विहीरियास वाषपयी १९५८ के ना० प्र० स० काशी

हिन्दी साहित्य बीसवीं छायादी- नन्दकुमारी वाषपयी १९६६ वि० हिन्दी साहित्य

सम्बद्ध प्रमाण

हिन्दी साहित्य- का० श्यामसुन्दरदास - २००३ वि० स० प्र० प्रमाण

हिन्दी साहित्य- डा० क्वारी प्रसाद मिश्री १९५२ के कथरकन्द कपुर केवती

हिन्दी साहित्य का बालेकात्मक प्रतिपाद- डा० रामकुमार का- संशोधित संस्करण

१९५४ डा संस्करण

हिन्दी साहित्य का प्रतिपाद- पं० रामकृष्ण शुक्ल - २००० वि० काशी

हिन्दु साहित्य का प्रतिपाद - तादी हिन्दी संस्करण डा० लक्ष्मीशानर वाष्पयि

हिन्दुतामी का उद्गम- पं० रामकृष्ण शुक्ल १९६६ वि० ना० प्र० स० काशी

हिन्दी साहित्य की प्रमिता - डा० क्वारी प्रसाद मिश्री

- A Comparative grammar of Indian language - R. Hornle.
 A Comparative Grammar of modern languages of India - J. Beames, London 1875
 A grammar of Brajbhakha, Mr. Mirja Khan B. by Ziauddin, Shantiniketan 1935.
 A grammar of Eastern Hindi - R. Hornle.
 A grammar of the Hindi language. S.H. Kellogg, London 1893
 A history of Indian literature - R. Winternitze, Calcutta 1933.
 A History of Hindi literature - F.E. Keay 1920.
 Evolution of Avadhi - Dr. Babu Ram Saxena, Allahabad.
 Hindi and Braj Bhakha grammar - J.R. Ballentyne, London 1839.
 History of Braj Boli literature - Sakumarsen Calcutta University 1935-
 Historical grammar of Apabhramsa - G.V. Tansore, Poona 1948.
 History of Mathili literature - Jaykant Misra.
 The Origine and development of Bengali language - Dr. S.K. Chaturjee,
 Calcutta 1926.
 The language of the country - Hobson, Johnson.
 La langue Braj (French) Dr. Dhurendra Verma.
 Linguistic survey of India . G.A. Grierson, Calcutta 1905-27
 Mathura Memorial - Grawn
 New Historical geography of India - Kariigham.
 Wilsons' Philological lectures - R.G. Bhandarkar.

कौन-कौन से पत्रिकाएँ हिन्दी - कौन

कनकौन- हिन्दी कनकौन

प्रचारक हिन्दी कनकौन- हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय , काठमांडू

प्रमाणिक हिन्दी कौन- हिन्दी साहित्य कुटीर काठमांडू

काका कनकौन- रामनारायण लाल साहवाण

हिन्दी विश्वकौन

हिन्दी कनकौन काठमांडू

कनकौन कनकौन - का० प्र० कनकौन काठमांडू

कनकौन हिन्दी कौन- काठमांडू काठमांडू काठमांडू

कनकौन कनकौन कनकौन- काठमांडू काठमांडू काठमांडू

कनकौन कनकौन कनकौन- काठमांडू काठमांडू काठमांडू

काकाका- काठमांडू

काकाका प्रचारिका पत्रिका - काठमांडू

काकाका काठमांडू-काठमांडू

काकाका- काठमांडू

काकाका-काठमांडू

काकाका पत्रिका- काठमांडू

हिन्दी कनकौन काठमांडू

हिन्दी कनकौन - काठमांडू

हिन्दी प्रीप - प्रमाण
 इण्डियन एन्टीक्वरी
 इण्डियन बाय कला कला रिपन एन्टीक्वरी
 कला बाय की रामस रक्षियाटिक एन्टीक्वरी
 रामस रक्षियाटिक कला
 कला बाय पि कला रक्षियाटिक एन्टीक्वरी
 विविध कला रिपोर्ट

— 101 —

यह संग्रह कला प्रीप की रामस रक्षियाटिक कला बाय कला रिपोर्ट ।

